

ISSN 2230-7001

The Journal of Indian Thought and Policy Research

(द जर्नल ऑफ इण्डियन थॉट एण्ड पॉलिसी रिसर्च)

(English & Hindi Bilingual Research Journal)

Year: 3

Issue : 1-2

September 2012-March 2013



**Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth
Allahabad**

The Journal of Indian Thought and Policy Research

द जर्नल ऑफ इण्डियन थॉट एण्ड पॉलिसी रिसर्च
(An English-Hindi Bilingual Research Journal)

Year: 3

Issues: 1-2

September 2012 - March 2013

Patron

Shri Ashok Singhal

Dr. Mahesh Mehta

Advisory Board

Dr. Murli Manohar Joshi

Justice Dr. Rama Jois

Dr. Subramanian Swami

Dr. Mahesh Sharma

Dr. Surendra Jain

Editorial Board

Prof. Girish Chandra Tripathi

Prof. Susheel Kumar Sharma

Dr. J.P. Mishra

Shri Rajeev Mishra

Editor

Dr. Chandra Prakash Singh

Editorial Address: Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth 21/16 Mahaveer Bhavan, Hashimpur Road Tagore Town, Allahabad- 211002 U.P. E-mail: nationalthought@gmail.com Tel. & Fax – 0532-2466563

Cite this issue as: 2 JITPR (I-II) 2013

© Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth 2013

No part of this journal can be printed, published, photo copied, reproduced or stored in any retrievable system except with prior written permission of the proprietors of this publication.

It is clarified that the views expressed by the authors of the articles published in the journal are their own and may not reflect the views of the Members of the Editorial Board.

Printed and Published by Dr. Chandra Prakash Singh at Allahabad for the proprietors, Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth, 21/16 Mahaveer Bhavan, Hashimpur Road Tagore Town, Allahabad- 211002(UP).



Contents

1.	EDITORIAL	01-03
2.	शिक्षा में राष्ट्रीयता का प्रश्न डॉ० राम शकल पाण्डेय	04-09
3.	उच्च शिक्षा मे समग्र चिंतन डॉ० अवधेश अग्निहोत्री	10-17
4.	उच्च शिक्षा : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियाँ प्रो० हेरम्ब चतुर्वेदी	18-22
5.	आज भी हमारी अपनी नहीं है शिक्षा नीति राजीव मिश्र	23-25
	भारत में अनुसूचित जातियों व जनजातियों की शैक्षिक स्थिति सुशील कुमार	26-32
7.	शिक्षा का अधिकार – संवैधानिक पहलू शैलेन्द्र कुमार अवस्थी	33-37
8.	What Ails Indian Education and What Fails Indian Economy Dr. Kunal Ghosh	38-44
9.	Education at a Loss of Values <i>Is the teacher responsible?</i> Dr JP Mishra	45-56
10.	Judicial Approach to the Issues Related With Age of Retirement of the University and College Teachers: An Analysis Guru Gyan Singh	57-72
11.	RIGHT TO EDUCATION Birendra Prasad	73-76
12.	EDUCATIONAL POLICY (Salient Points)	77-101

भारतीय शिक्षा कल और आज

डॉ० चन्द्र प्रकाश सिंह

शिक्षा केवल पढ़ने, लिखने या सूचनाओं को स्मरण रखने की प्रक्रिया मात्र नहीं है, अपितु शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास की आधारशिला है। मनुष्यों के सामूहिक चरित्र एवं व्यक्तित्व के आधार पर ही किसी राष्ट्र या समाज में ज्ञान-विज्ञान, शान्ति, समृद्धि, शौर्य एवं शक्ति का उत्कर्ष होता है। अतः शिक्षा व्यष्टिगत होते हुए भी समष्टि को प्रभावित करती है। व्यक्ति के विचारों को दिशा देने में उसके चतुर्दिक वातावरण, परिस्थिति, जीवन में घटित घटनाओं के साथ ही उसके द्वारा अर्जित शिक्षा का प्रमुख स्थान होता है।

मानव एक मननशील प्राणी है। शिक्षा का गुण उसे निसर्ग से ही प्राप्त है। मनुष्य अपने जन्म के पश्चात् वाह्य परिस्थितियों के सम्पर्क से कुछ न कुछ सीखना प्रारम्भ कर देता है। जीवन में प्रत्येक व्यक्ति एवं घटना से मनुष्य कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण करता है और वह उसके आगामी जीवन के लिए मार्गदर्शक होती है। इन अर्थों में देखा जाय तो एक अनपढ़ व्यक्ति में भी सीखने की प्रक्रिया चलती रहती है, परन्तु मनुष्य क्या सीखे और क्या न सीखे इसका विवेक अत्यंत आवश्यक है। भारतीय मनीषियों ने शिक्षा को संस्थागत स्वरूप प्रदान कर मनुष्य के व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं सृष्टि व उसके परे के व्यापक तत्व के साथ उसके सम्बन्ध, इन सभी पहलुओं के विकास की प्रक्रिया को नियोजित करते हुए 'शिक्षा' नाम दिया। शिक्षा के संस्थागत स्वरूप पर विचार करें तो यह देखने को मिलता है कि प्राचीन काल में जो संस्कृति जितनी विकसित थी वहाँ उतना ही पहले शिक्षा का संस्थागत स्वरूप खड़ा हुआ।

भारत में वैदिक काल से ही गुरुकुलों के माध्यम से शिक्षा देने की व्यवस्था का विस्तृत वर्णन हमें प्राप्त होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में एक अध्याय का नाम ही शिक्षा-वल्ली है, जिसमें गुरु-शिष्य के सम्बन्ध एवं उनके कर्तव्य का वर्णन किया गया है। गुरु के द्वारा दिए गये वे उपदेश आज भी विद्यार्थियों के लिए उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उस काल में थे। शिक्षा का अर्थ यहाँ केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं वरन् उन सूचनाओं का विनियोग अर्थात् उनके आधार पर कार्य के विविध क्षेत्रों में योजना एवं दिशा के निर्धारण की योग्यता का निर्माण था। विद्यार्थी को जीवन पर्यन्त स्वयं को शिक्षित करते रहने में सक्षम बनाना ही शिक्षा का यथार्थ उद्देश्य होना चाहिए। इन गुरुकुलों में गुरुओं के द्वारा शिक्षा के माध्यम से ऐसे ही विवेक के विकास का कार्य किया जाता था। उनका अपने शिष्यों से स्पष्ट कहना था कि—जो हमारे अच्छे आचरण हैं उनका ही तुमको सेवन करना चाहिए दूसरों का कभी नहीं।¹ अतः वे ऐसी शिक्षा पर विश्वास करते थे जिसके द्वारा व्यक्ति सही-गलत का निर्धारण कर सके न कि केवल सूचनाओं को ढोने वाला भारवाहक बने।

प्राचीन शिक्षा को प्रमुख रूप से चार संकायों में विभाजित किया गया था— आन्विक्षीकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति। आन्विक्षीकी के अन्तर्गत सांख्य, योग एवं लोकायत (चार्वाक) आदि

¹ यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपस्यानि। नो इतराणि। तैत्तिरीयोपनिषद्। 11/11

दर्शनों का अध्ययन होता था।² त्रयी के अन्तर्गत वैदिक शिक्षा एवं उससे सम्बन्धित शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष आदि वेदांगों का अध्ययन का विधान था। कृषि, पशुपालन और व्यापार ये वार्ता विद्या के विषय थे³। अतः वार्ता व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत आती थी, जिस प्रकार से आज आभियान्त्रिकी, चिकित्सा या प्रबन्धन आदि की शिक्षा दी जाती है। व्यावसायिक शिक्षा अर्थात् वार्ता विद्या सभी को प्राप्त करने का अधिकार था। तीसरी राज्य संचालन सम्बन्धी विद्या दण्ड कहलाती थी, जिसके अन्तर्गत प्रशासन एवं न्याय की शिक्षा दी जाती थी।

इन गुरुकुलों के संचालन में राज्य का किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होता था। पाठ्यक्रम निर्धारण, प्रबन्धन एवं संचालन सभी कार्य ऋषियों के द्वारा समाज के सहयोग से सम्पन्न होते थे। राज्य के द्वारा यथावसर सहयोग प्रदान करने के उल्लेख तो प्राप्त होते हैं, परन्तु गुरुकुलों में क्या पढ़ाया जाए और कैसे पढ़ाया जाय यह उस समय के महान शिक्षाविद् ऋषि ही निर्धारित करते थे, जिनका सम्पूर्ण जीवन शिक्षा के लिए समर्पित होता था। इस परम्परा के अन्तर्गत भरद्वाज, वशिष्ठ एवं संदीपनी के आश्रम व उसके पश्चात् तक्षशिला, विक्रमशिला एवं नालंदा जैसे विश्वविद्यालय भारत में विकसित हुए। जहाँ देश-विदेश के विद्यार्थी शिक्षा लेने के लिए आते थे।

शिक्षा की उपरोक्त परम्परा हजारों वर्ष तक हमारे देश में इसी प्रकार चलती रही। शिक्षा व्यवस्था के मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन भारत में ब्रिटिश शासन काल में आया। शनैः-शनैः सरकार ने सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था अपने हाथों में ले ली। नीति निर्माण, संचालन, पाठ्यक्रम निर्धारण आदि सब कुछ सरकार के द्वारा किया जाने लगा।

ब्रिटिश शासन काल में शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम कार्य 1784 में हेस्टिंग्स के सहयोगी सर विलियम जोन्स के द्वारा एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना का किया गया। जहाँ प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का गहन अध्ययन किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अध्ययन के परिणाम स्वरूप अंग्रेजों को भारत देश के गौरव एवं ज्ञान का आभास हो गया और उन्हें यह लगा कि यदि इसे नष्ट नहीं किया गया तो भारत पर दीर्घ काल तक शासन नहीं किया जा सकता। अगले लगभग 40 वर्षों तक कम्पनी के अधिकारियों में इस विषय को लेकर विचार-विमर्श चलता रहा कि शिक्षा की नीति और लक्ष्य क्या हो, उसका माध्यम क्या हो तथा शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था एवं पद्धति क्या हो। 2 फरवरी 1835 ई. को मैकाले ने अपना महत्वपूर्ण प्रतिवेदन गवर्नर की परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसे तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने पूरी तरह स्वीकार कर लिया। मैकाले भारतीयों में पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ एक ऐसे समूह का निर्माण करना चाहता था, जो रंग एवं रक्त से भारतीय हो, पर विचारों, रुचि एवं बुद्धि से अंग्रेज हो। भारत के रीति-रिवाज एवं साहित्य के विषय में मैकाले का कहना था कि यूरोप के एक अच्छे पुस्तकालय की आलमारी का रैक भारत के समस्त साहित्य से अधिक मूल्यवान है। लॉर्ड मैकाले के अनुसार कम्पनी सरकार को यूरोप के साहित्य का विकास अंग्रेजी भाषा में करना था। भविष्य में धन का व्यय भी इसी पर किया जाना था। यही अभिलेख भारत के भावी शिक्षा का आधार बना। 19 जुलाई 1854 को बोर्ड आफ कन्ट्रोल के प्रमुख चार्ल्स वुड के द्वारा शिक्षा पर एक व्यापक कार्य योजना प्रस्तुत की

² सांख्य योगो लोकायतम् चेत्यान्वीक्षकी। 1/1/6 कौटिलीय अर्थशास्त्र

³ कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। 1/3/1 कौटिलीय अर्थशास्त्र

गई, जिसे “बुड डिस्पैच” कहा गया। 100 अनुच्छेदों वाला यह प्रस्ताव भारतीय शिक्षा का “मैगना कार्टा” भी कहा जाता है। इसमें शिक्षा के उद्देश्य, माध्यम, सुधारों आदि पर विचार किया गया था। इस प्रस्ताव के आधार पर पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार को सरकार ने अपना उद्देश्य बनाया। उच्च शिक्षा को अंग्रेजी भाषा में दिए जाने पर बल दिया गया। इसके बाद ही 1857 ई० में बम्बई, मद्रास एवं कलकत्ता विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। तब से लेकर आज तक कुछ संशोधनों एवं सुधारों के साथ शिक्षा का वही स्वरूप चला आ रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् राधाकृष्णन आयोग, कोठारी आयोग एवं ज्ञान आयोग आदि के माध्यम से सरकार के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के अनेक प्रयास किये गये परन्तु आधारभूत ढाचा ज्यों का त्यों बना रहा।

इन पौने दो सौ वर्षों में मैकाले का चिन्तन कितना साकार हो पाया है यह दृष्टिगत है। अब तो शिक्षा सरकारी तंत्र से लाईसेन्स प्राप्त उद्योग के एक नए रूप में हमारे सामने दिखलाई पड़ रही। राष्ट्र एवं समाज के प्रति एक उत्तरदायी नागरिक निर्माण करने के स्थान पर वह एक ऐसे व्यक्ति का निर्माण कर रही है जो समग्र चिंतन के अभाव में भ्रमित होता जा रहा है। शिक्षा को मात्र आजीविका प्राप्त करने का साधन मानने वाली यह प्रणाली शिक्षा के बाजार में विद्यार्थियों से सौदा करती हुई दिखाई देती है। एक उत्तरदायी नागरिक के स्थान पर पैसे से खरीदी गई शिक्षा को प्राप्त करने वाला विद्यार्थी अपने पूरे जीवन भर पैकेज एवं वेतन का मोलभाव करते दिखलाई पड़ रहा है। शिक्षा का महान उद्देश्य बौद्धिक विकास, मानसिक सन्तुष्टि एवं वैश्विक संवेदना व भौतिक अभ्युदय कहीं खो गया दिखलाई पड़ता है।

यह वर्तमान का यथार्थ है कि प्राचीन को यथावत् नहीं स्वीकार किया जा सकता, लेकिन प्राच्य के उद्देश्य, भाव एवं श्रेष्ठता को आत्मसात कर वर्तमान का परिष्कार किया जा सकता है। शिक्षा के उद्देश्य, प्रणाली, प्रबन्धन, पाठ्यक्रम एवं नीति सभी विषयों पर आज गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है। क्योंकि शिक्षा समाज की वह धमनी है जिसमें प्रवाहित होने वाला विचार एवं ज्ञानरूपी रक्त सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करता है। आज समाज में अनेकानेक विसंगतियाँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही, इसका कारण है कि आज हमारी शिक्षा रूपी धमनी में गलत रक्त प्रवाहित हो रहा है। इनका समाधान किसी विधि एवं आदेश की अपेक्षा मानव चिन्तन एवं ज्ञान के परिष्कार द्वारा ही सम्भव है।

‘द जर्नल ऑफ इण्डियन थॉट एण्ड पालिसी रिसर्च’ का यह अंक शिक्षा को केन्द्रबिन्दु बनाकर प्रकाशित किय जा रहा है। इस अंक में शिक्षा से सम्बन्धित अनेक पहलुओं पर आलेख नहीं प्राप्त हो सके हैं; परन्तु इस प्रयास को आगे बढ़ाते हुए विद्वतजनों की सहभागिता एवं शिक्षा से सम्बन्धित आलेखों की जर्नल को सदैव अपेक्षा रहेगी और प्रकाशन का यह क्रम चलता रहेगा।

शिक्षा में राष्ट्रीयता का प्रश्न

डॉ० राम शकल पाण्डेय*

कुछ विचारक भारत की विविधता को देखकर यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि भारत एक राष्ट्र न होकर केवल एक उपमहाद्वीप है, जिसमें विभिन्न प्रकार की राष्ट्रीयताएं विद्यमान हैं। इन लोगों का तर्क है कि अतीत काल में भी भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे और यहाँ के लोगों में 'भारतीय राष्ट्र' की कल्पना तक विद्यमान नहीं थी। आखिर, हम राष्ट्रीयता को समझते क्या हैं? राजनीतिज्ञों ने राष्ट्रीयता की परिभाषा करते समय भौगोलिक सीमा, इतिहास, संस्कृति, भाषा, धर्म, परम्परा आदि पर विचार किया है। सभी तत्त्वों के आधार पर एकताबद्ध राष्ट्र बहुत कम होते हैं। कुछ राष्ट्र केवल भाषा के आधार पर संगठित होते हैं। उदाहरणार्थ, यूरोप में भाषा के आधार पर ही अनेक देश बन गए हैं। इसी प्रकार पाकिस्तान के निर्माण का आधार धर्म है। किन्तु भारत को राष्ट्र मानने के पक्ष में तो अनेक तत्त्व विद्यमान हैं।

भौगोलिक दृष्टि से हिमालय पर्वत के दक्षिण में एवं हिन्द महासागर के उत्तर में जो भू-भाग है वह भारत कहलाता है। इसकी उत्तरी एवं दक्षिणी सीमाएं तो सदा से निश्चित रही हैं, किन्तु पूर्व एवं पश्चिम की सीमाओं में कुछ हेर-फेर होता रहा है। आज के अफगानिस्तान, पाकिस्तान एवं ब्रह्मदेश किसी समय भारत के ही भू-भाग थे। इस भौगोलिक सीमा को प्रकृति ने निर्मित किया है। सम्पूर्ण देश में ऋतुओं का क्रम एक-सा ही है। भौगोलिक दृष्टि से समूचा भारत कृषिप्रधान देश है, प्राकृतिक सीमाओं से निर्मित है, मानसूनी जलवायु वाला है एवं अनेकानेक भिन्नताओं के होते हुए भी एक राष्ट्र का द्योतक है।

उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं की जननी संस्कृत है और दक्षिण की भाषाओं पर भी इसका अत्यधिक प्रभाव है। भाषा की दृष्टि से संस्कृत ने अब तक समग्र राष्ट्र को एक सूत्र में बांध रखा है। राम, कृष्ण, ऋषभ देव, बुद्ध, नानक आदि को भारत में सर्वत्र महापुरुष माना जाता है। सहिष्णुता, अहिंसा, क्षमा, दया, अक्रोध, त्याग, संयम आदि भावनाओं को यहाँ उच्चासन दिया जाता है, जबकि कुछ राष्ट्रों में इनका कोई मूल्य नहीं है। हमारी संस्कृति, हमारी परम्पराएं, हमारी धार्मिक मान्यताएं यह सिद्ध करती हैं कि हममें राष्ट्रीयता के अनेक तत्त्व विद्यमान हैं। यदि हम इन तत्त्वों को पहचान कर इन्हें सुदृढ़ बनायें, तो आज भी हम शक्तिशाली राष्ट्र बन सकते हैं।

अतीत काल में भी यहाँ पर राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान थी। 'व्यचिष्टे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये' (ऋग्वेद 5-66-6) कहकर वैदिक ऋषि ने तत्कालीन जनता के इस संकल्प को वाणी दी थी कि हम विस्तृत एवं बहुरक्षित स्वराज्य के कल्याणार्थ प्रयत्नशील रहेंगे। इसी प्रकार 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः' (यजुर्वेद 9-23) कहकर राष्ट्रनायकों ने सदा जाग्रत रहने की आकांक्षा प्रकट की थी। भारतीय इतिहास हमें बताता है कि सुदूर अतीत में अशोक ने राजनीतिक दृष्टि से भी भारत को एक शासन के अन्तर्गत रखा। भारतीय राजनीति शास्त्र में 'चक्रवर्ती' की कल्पना भी इस तथ्य का द्योतक है कि भारतीय जनता उस सम्राट के समक्ष नतमस्तक होती थी जो सम्पूर्ण राष्ट्र को एक शासन के अंतर्गत लाकर राजनीतिक एकता

* अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

स्थापित करता था। मौर्योत्तर काल में जो अनेक प्रशासकीय इकाइयाँ थीं, उन्हें पुनः एक सूत्र में पिरोने का काम गुप्त सम्राटों ने किया। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त एवं स्कन्दगुप्त के नाम इस दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं। तत्पश्चात् हर्षवर्द्धन को राजनीतिक एकता स्थापित करने का गौरव प्राप्त हुआ। मुगलों से पूर्व अलाउद्दीन खिलजी ने भी समूचे देश में राजनीतिक एकता स्थापित कर दी थी। मुगलों में अकबर के समक्ष इतिहासकार नतमस्तक होकर उसे महान् की उपाधि से विभूषित करते हैं। साम्प्रदायिक एकता की दिशा में अकबर के महान् प्रयासों की औरंगजेब ने अवहेलना की तो उसे राजनीतिक विघटन के रूप में इस अवहेलना का दण्ड भुगतना पड़ा। अंग्रेजों ने भारत को पुनः एक सूत्र में बाँधा और वर्तमान कालीन प्रशासकीय एकता का सूत्रपात ब्रिटिश काल में हुआ।

भारत को स्वतंत्रता मिली तो देश में अनेक समस्याएं थीं। इन अनेकानेक समस्याओं में राष्ट्रीय विघटन की समस्या भी एक थी। किन्तु हमारे तथाकथित राजनेताओं ने प्रारम्भ में कुछ ध्यान नहीं दिया। स्वतंत्रता के चौदह वर्ष बाद देश में राष्ट्रीय एकता का नारा लगाया गया और उस समय सत्तारूढ़ दल ने यह नारा बड़ी बुलन्द आवाज में लगाया था। शासन ने राष्ट्रीय एकता समिति की स्थापना की और एक अन्य समिति डॉ० सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में इसलिए नियुक्त की गई कि वह भावात्मक एकता के अनुरूप शैक्षिक कार्यक्रम सुझाए। कई वर्ष राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वाधान में माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों की संगोष्ठियाँ आयोजित की गयीं, जिनमें राष्ट्रीय एकता के विभिन्न पक्षों पर सामूहिक चर्चाएँ हुईं।

इन सब प्रयत्नों के बावजूद आज देश में वे तत्त्व प्रबल हैं जिनसे राष्ट्र छिन्न-भिन्न हो सकता है। इनमें एक तत्त्व है क्षेत्रीयता की भावना। उत्तर एवं दक्षिण की भावना, पंजाबी, तमिल, बंगाली आदि की भावना हम में घर कर गयी है। हम अपने को बंगाली, नागा, कश्मीरी, तमिल पहले समझते हैं, भारतीय बाद में। क्षेत्रीयता की यह भावना राज्य तक ही सीमित न होकर राज्य के अंतर्गत क्षेत्र विशेष की भावना से भी सम्बद्ध हो जाती है और तब हम ब्रजभूमि, अवध आदि की सीमा में सोचते हैं या पृथक तेलंगाना, गोरखालैंड, झारखण्ड, बोडोलैंड, उत्तराखण्ड आदि की स्थापना के लिए संकल्प करते हैं।

जातीयता हमारी दूसरी विघटनकारी प्रवृत्ति है। हम जाति के आधार पर ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, आदि की भावनाओं से त्रस्त हैं। हमारे क्रियाकलापों का आधार जाति हो जाती है—मन्त्रिमण्डल के निर्माण से लेकर चपरासी की नियुक्ति तक में हम जातिगत भावनाओं के वृत्त में ही सोचते हैं। कभी-कभी तो हम सभी जातियों को सभा-समितियों में प्रतिनिधित्व प्रदान करने का स्वांग रचते हैं और, उस समय, यह भूल जाते हैं कि इस निकृष्ट भावना को आधार बनाकर किया गया कार्य आडम्बर मात्र है।

साम्प्रदायिकता की भावना हमारी तीसरी कठिनाई है। हम अपने राजनीतिक चुनावों में साम्प्रदायिकता के आधार पर मत प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं और इस विषय का स्वयं पान करने एवं अपनी गतिविधियों के द्वारा साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन प्रदान करके हम साम्प्रदायिकता के विरोध में लम्बे-लम्बे भाषण दिया करते हैं। भाषण—वीर तो हम इतने हैं कि हम से कोई भी व्यक्ति साम्प्रदायिकता, जातीयता एवं क्षेत्रीयता के विरोध में भाषण दिला ले, पर कर्मवीर और साहसी हम इतने हैं कि बहुमत, तो कभी अल्पमत की आड़ में हम राष्ट्रीय मुख्य धारा के विपरीत ही चलना चाहेंगे और 'राष्ट्रीय' एवं 'भारतीय' शब्दों एवं विचारों को भी हम साम्प्रदायिकता कहकर टाल देंगे।

भाषावाद हमारी चौथी दुर्बलता है। राष्ट्रभाषा की माला जपेंगे पर अंग्रेजी के चंगुल में सदा फंसे रहेंगे। कभी-कभी प्रादेशिक भाषाओं को आगे करके हम उनकी आड़ में तीर चलायेंगे और प्रसन्न हो लेंगे कि अब राष्ट्रभाषा के समर्थक कैसे प्रत्युत्तर में तीर चलायेंगे। उत्तर भारत के छात्र यदि हिन्दी के पक्ष में आन्दोलन करके डाकघर जलायेंगे तो दक्षिण भारत के साहसी छात्र स्टेशन फूंककर अपने शौर्य का प्रदर्शन करेंगे और अंग्रेजी को अपने ऊपर लादे रहकर भी राष्ट्रीय बनने का स्वप्न देखेंगे।

विदेशी राज्यभक्ति हमारी पांचवी कमजोरी है जिस पर सर्वहारावाद अथवा पश्चिमी मार्का विश्वबन्धुत्व या सात समुद्रपार से आयात किया गया समाजवाद अथवा अंग्रेजी ब्रांड की अन्तरराष्ट्रीयता का पर्दा हम नहीं डाल सकते। सुन्दर नारों का घूँघट उठा देने पर हमारी विदेश-भक्ति से दीप्त मुखाकृति स्पष्ट हो जाएगी। हमें चेक जनता की वह राष्ट्रभक्ति अभी तक याद है जो साम्यवादी देश था और जिस पर एक अन्य साम्यवादी देश ने जब आक्रमण किया तो समूची जनता ने आक्रामक साम्यवादियों के साथ पूर्णतः असहयोग कर उन्हें आश्चर्य में डाल दिया। हमें यह भी ज्ञात है कि रूस और चीन की सेनाएं कई स्थलों पर आमने सामने खड़ी हैं। सर्वहारावाद के लिए भी ठोस राष्ट्रीय भूमि चाहिए, अन्यथा वह आसमानी प्रत्यय हो जाएगा। देश में स्थान-स्थान पर पाकिस्तानी जासूसों के क्रिया-कलापों का जो भण्डाफोड़ हुआ है वह हमारी आंखें खोल देने वाला है। उससे यह प्रकट होता है कि हमारी सेना में भी कुछ अधिकारी विदेशी राज्यभक्ति के रोग से ग्रसित हैं।

आर्थिक असमानता हमारी छठी दुर्बलता है। स्वतंत्र भारत में हमने इस असमानता को बढ़ाया ही है, कम नहीं किया। साधारण व्यक्तियों की यदि हम क्षुधा भी तृप्त नहीं कर सकेंगे तो उनसे राष्ट्रप्रेम की आशा करना व्यर्थ हो जाएगा क्योंकि तब वे विदेशी प्रलोभनों के चक्कर में सरलता से फंस जायेंगे। अतः धनी एवं निर्धन के बीच की खाई को शीघ्र पाटना है, जिससे कि राष्ट्रीयता के लिए सबल आधार मिल सके। देश के किसानों एवं मजदूरों को संगठित होने की आवश्यकता है। संगठित किसान-सभाएं एवं मजदूर-संघ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था द्वारा किये गये विघटन को समाप्त कर सकते हैं। पूंजीपतियों का स्वार्थ राष्ट्र के विघटन में भी निहित होता है। अतः सामान्य मजदूरों एवं किसानों की राष्ट्रव्यापी एकता वास्तविक एकता होगी, किन्तु यह कार्य हिंसा के माध्यम से न होकर लोकतन्त्र के मार्ग से ही होना आवश्यक है। इस आर्थिक असमानता को वाणी से दूर करने के लिए राजनीतिक दलों में होड़-सी लगी हुई है और अब कोई दल ऐसा नहीं बचा है जिसने समाजवाद का मुखौटा न धारण कर लिया हो। किन्तु आवश्यकता शाब्दिक मायाजाल की न होकर काम करने की है।

भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम का अभाव हमारी सातवीं अखरने वाली बात है। भारत ग्रामों में बसा है और हम ग्रामीण संस्कृति को देहाती कहकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। उस दशा में हम ग्रामोत्थान या समाजवाद का जो नारा लगाते हैं वह कितना खोखला है, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि हम दिल्ली के वातानुकूलित कक्ष को छोड़कर किसी ग्राम में दो दिन भी नहीं रहना चाहते। भारत कृषि-प्रधान देश है किन्तु कृषकों के प्रति हम अपना कोई कर्तव्य नहीं समझते। भारतीय संस्कृति से हमें कोई लगाव नहीं। शासन में नियुक्ति के लिए हमें इसकी कोई आवश्यकता नहीं और विदेशी दूतावासों में नियुक्ति के समय इसका ज्ञान हमारे लिए अनिवार्य नहीं। तब यदि कोई भारतीय राजदूत विदेश में कालिदास को कांग्रेसी नेता या तुलसीदास को तहसीलदार बता दे तो आश्चर्य नहीं होगा। भारतीय संस्कृति

के प्रति प्रेम जाग्रत करना राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यावश्यक है। भारतीय वेशभूषा के प्रति घृणा, भारतीय जीवन-पद्धति के प्रति उदासीनता, भारतीय ग्रामीण जनता की अवहेलना; भारतीय नदियों, पर्वतों, उपत्यकाओं के प्रति अश्रद्धा, भारतीय भाषाओं का तिरस्कार, भारतीय साहित्य का अनादर आदि से यह तथ्य स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति के प्रति हमारा प्रेम नाममात्र को है।

इन दुर्बलताओं से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय यह बताया जाता है कि इसके लिए शासन को प्रयत्न करना चाहिए। आज हमारे देश में संसदीय जनतन्त्र है। संसदीय जनतंत्र में राजनीतिक दलों का विशेष महत्व होता है। एक प्रकार से संसदीय जनतन्त्र में दलीय शासन ही होता है। भारत में राजनीतिक दलों की स्थिति क्या राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के पक्ष में है? पुरानी समाजवादी पार्टी एक न रह सकी और वह चार भागों में बंटी; और वर्तमान में समाजवादी कही जाने वाली पार्टी पारिवारिक पार्टी बनकर रह गयी है। साम्यवादी पार्टी भी आज दक्षिणपंथी, वामपंथी और नक्सलपंथी होकर तीन रूपों में विभक्त हो गई। कांग्रेस के दीर्घकालीन शासन में भी राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ होने के स्थान पर कमजोर ही हुई है। वह भी अनेक बार राजनीतिक स्वार्थ के आधार पर विभाजित होती रही है। ऐसे दल देश को एकता के सूत्र में क्या बांध सकेंगे, जो स्वयं ही एकता के मार्ग पर न चल सके। वैसे, शासन द्वारा प्राप्त राष्ट्रीय एकता ऊपरी एवं अस्थायी होती है। भारत अब तक 'भारत' इसलिए नहीं बना रहा कि वह सदा एक शासन के अंतर्गत रहा, वरन् इसलिए कि इसकी सांस्कृतिक एकता सदा बनी रही।

सांस्कृतिक एकता ही वास्तविक एकता है। अभी तक जनता भारत के कोने-कोने तक तीर्थाटन के बहाने पहुंचती रही है। अभी तक राष्ट्रीय पुरुषों के आदर्श देश-भर में व्याप्त रहे हैं और साहित्य, कला, मानवधर्म आदि के आधार पर समूचा देश एक प्रकार के आदर्शों से प्रेरित रहा है। किन्तु आज ये प्रेरक स्रोत निर्बल हो रहे हैं, ये मान्यतायें दूर हो रही हैं, ये मूल्य अब पुराने पड़ते जा रहे हैं। अतः आज इस बात की आवश्यकता है कि विज्ञानप्रदत्त संचार के साधनों एवं अन्य माध्यमों का उपयोग करते हुए सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में बांधने की चेष्टा की जाए।

अतः राष्ट्रीय एकता की दिशा में शिक्षा को प्रयत्नशील होना चाहिए। कुरीतियों एवं कुप्रवृत्तियों को दूर करने का एक अमोघ अस्त्र शिक्षा है।

भारतीय शिक्षा के सन्दर्भ में यदि राष्ट्रीय एकता को आवश्यक शैक्षिक आदर्श स्वीकार कर लिया जाता है तो हमें विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में परिवर्तन करना होगा। विज्ञान एकता का सबल साधन है और इसी के सहारे आज मानव के चरण चन्द्रतल पर भी पड़े हैं। चन्द्र तक मानव की उड़ान असम्भव होती अगर अमरीका के विद्यालयों में विज्ञान पर बल न दिया जाता। हमें अपने पाठ्यक्रमों में भी विज्ञान को समादरणीय स्थान प्रदान करना है। किन्तु केवल विज्ञान के स्नातक भारतीय जनता का कल्याण नहीं कर पायेंगे। जब तक उनमें भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था नहीं जाग्रत होती, जब तक वे विज्ञान को नैतिकता का सबल आधार नहीं प्रदान कर सकते, तब तक वे लोभी चिकित्सक, अकुशल कृषक एवं भ्रष्ट इंजीनियर के ही स्तर पर रह जायेंगे। अतः भारतीय युवकों को भारतीयता की शिक्षा मिलनी चाहिए। भारतीय विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र आदि विषयों को इसलिए नहीं सम्मिलित करना है कि छात्र भारतीय इतिहास को कपोल-कल्पित, भारत भूमि को सर्प-साधु युक्त भू-भाग एवं भारतीय जनता को निपट मूर्ख समझने लगें; वरन् इन विषयों को इसलिए सम्मिलित करना है

कि छात्र का मन भारत की गौरव-गरिमा से गुंजरित होकर देश के नव निर्माण की ओर उन्मुख हो सके। यह बात छिपी हुई नहीं है कि अंग्रेजी साहित्य की अपेक्षा संस्कृत, हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य भारतीयता का अधिक पोषक है। इन्हीं साहित्यों में भारतीय समाज की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। हमें भाषा एवं साहित्य के चुनाव में इस बात का ध्यान रखना होगा। भारत एक कृषिप्रधान देश है। इस देश के पाठ्यक्रम में कृषि को उपेक्षित करके हम जनता की समस्याओं से परिचय कैसे प्राप्त कर सकेंगे?

राष्ट्रीय एकता के अनुरूप यदि पाठ्यक्रम को हम गठित कर लेते हैं तो हमारा यह दायित्व हो जाता है कि कक्षा के अन्दर पाठ्यक्रम पर तदनुरूप आचरण भी करें। यह बात शिक्षण-विधि से सम्बन्धित है। हम उच्च आदर्शों से युक्त पाठ्यक्रम को सरलता से बना सकते हैं, किन्तु कक्षा के अन्दर उसका सफल संचालन सरल कार्य नहीं है। हमारे अधिकांश विद्यालयों में परम्परागत शिक्षण-पद्धति का बोलबाला है जिसमें छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में ही बैठे रहते हैं। ऐसे छात्रों की बुद्धि कुंठित हो जाती है और वे किसी भी विषय पर स्वतंत्र चिन्तन के लिए प्रायः अयोग्य सिद्ध होते हैं। जो छात्र तर्कपूर्ण रीति से चिन्तन ही नहीं कर सकेंगे वे भारतीय राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने के लिए अपने भावी जीवन में जनता का किस प्रकार नेतृत्व करेंगे? अतः आवश्यक है कि हमारी शिक्षण-विधि छात्रों में स्वतंत्र चिन्तन का विकास करे, उन्हें नए उत्तरदायित्व को वहन करने की क्षमता प्रदान करे, प्रदत्तों के आधार पर तर्कपूर्ण ढंग से उन्हें निष्कर्ष निकालने की प्रेरणा दे, पूर्वधारणाओं से ऊपर उठने की योग्यता दे एवं राष्ट्र को समृद्ध बनाने की उनमें आकांक्षा भर दे। इसके लिए कक्षा के अन्दर छात्रों की क्रियाओं को निर्देशित करना होगा। इसके साथ ही उन्हें अनेक विषयों की जानकारी प्रदान करने के निमित्त पाठ्य सहगामी क्रियाओं की योजना बनानी होगी। भारत-दर्शन, वाद-विवाद, सामूहिक चर्चा, परिचर्चा, संगोष्ठी एवं कार्यगोष्ठी की योजना छात्रों को स्वतंत्र चिन्तन की ओर उन्मुख करेगी।

उपर्युक्त कार्य तभी सम्भव है जबकि शिक्षक का स्वयं का दृष्टिकोण प्रगतिशील, राष्ट्रीय एवं वैज्ञानिक हो। शिक्षक पढ़ाते समय देश के वीरों का परिचय किस प्रकार देता है, अपने साहित्य को किस दृष्टि से प्रस्तुत करता है, अन्तः कथाओं को किस हावभाव से प्रस्तुत करता है, शिवाजी, औरंगजेब, मीरजाफर, क्लाइव आदि का किस रूप में परिचय कराता है, और भारतीय भूगोल को किस दृष्टिकोण से छात्रों के समक्ष उपस्थित करता है— ये बातें महत्त्वपूर्ण हैं। अभिवृत्ति के दृष्टिकोण पढ़ाए नहीं जाते, अनजाने ही ग्रहण कर लिए जाते हैं। अतः पढ़ाते समय शिक्षक को सदा सावधान रहने की आवश्यकता होती है। शिक्षक को स्वयं अपना दृष्टिकोण भी सत्त परीक्षा की कसौटी पर कसते रहना चाहिए। उसे समुदाय के मनोविज्ञान का पारखी होना चाहिए, ताकि वह समुदाय का सफलता से मार्गदर्शन कर सके।

राष्ट्रीय एकता के अनुरूप पाठ्यक्रम का उपयुक्त शिक्षण-पद्धति के माध्यम से संचालन तभी किया जा सकता है, जबकि विद्यालय का वातावरण राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण हो। इस दृष्टि से विद्यालयों का संगठन, उनकी व्यवस्था एवं उनका प्रशासन भी महत्त्वपूर्ण है। विद्यालयों का संगठन राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। ऐसा न हो कि देश को जिन विषयों के स्नातकों की आवश्यकता नहीं, उनमें शिक्षित अनेक युवक निकलें और जिन क्षेत्रों में मांग है उनके लिए शिक्षितों की कमी हो। नए विद्यालयों का खोलना राजनीतिक दबाव पर आधारित न होकर क्षेत्रीय आवश्यकताओं पर आधारित हो, जिससे कि राष्ट्र का विकास संतुलित

रूप से हो सके। ग्रामों के शिक्षित युवकों का नगरों की ओर भागना हमारी इस दिशा में किसी त्रुटि का ही संकेत है। विद्यालयों का प्रबन्ध भी राष्ट्रीय दृष्टिकोण से होना चाहिए। इस कार्य में सफलता केन्द्रीकरण या विकेन्द्रीकरण के माध्यम से न होकर मानवीकरण के माध्यम से ही सम्भव है, आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षालयों में शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, छात्र एवं अभिभावकों के मध्य सौहार्द स्थापित हो और पारस्परिक विश्वास के आधार पर वे आगे कदम बढ़ायें। शैक्षिक प्रशासन की पूरी मशीनरी ब्रिटिश शासन काल की देन है और स्वतन्त्र भारत में यत्र-तत्र पैबन्द लगाकर हम उसी के आधार पर शिक्षा का प्रशासन करते हैं। इस प्रकार फाइल-केन्द्रित प्रशासन में शिक्षण की भावना में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इसमें शनैः-शनैः शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रक्रिया को अपनाने की आवश्यकता है। ध्यान रखने की बात है कि यह वही शैक्षिक प्रशासन है जिसे स्वतंत्रता-आन्दोलन के समय राष्ट्रीय नेताओं ने अराष्ट्रीय बताया था और इसके अधिकार-क्षेत्र के बाहर उन्होंने विश्वभारती, काशी विद्यापीठ, तिलक विद्यापीठ, गुरुकुल, जामिया मिलिया, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, आदि संस्थाओं की स्थापना की थी।

उच्च शिक्षा मे समग्र चिंतन

डॉ० अवधेश अग्निहोत्री*

ईश्वर के बाद यदि सर्वाधिक चर्चा होती है, तो वह है शिक्षा, संस्कार, द्विजता, ज्ञान-विज्ञान की। महाकाव्य सृजित करने जैसा है शिक्षा में समग्र चिंतन। इसलिए यहाँ पहले उच्च शिक्षा की बात करना समीचीन है। उच्च शिक्षा में पंचभूत आधार बनते हैं और समस्याएं और समाधान भी तदनुकूल।

प्रथम आधार – शिक्षा का मूल लक्ष्य है— वैयक्तिक मुक्ति या विकास क्रम (जीवन का विज्ञान)।

द्वितीय आधार – उच्च शिक्षा और राष्ट्रीय अस्मिता (स्वदेशी)।

तृतीय आधार – उच्च शिक्षा और शिक्षक-छात्र संदर्भ (संघ शक्ति)।

चतुर्थ आधार – उच्च शिक्षा और वैश्विक-आधुनिक संदर्भ, निष्पादन तथा नियोजन (सरकारी-गैरसरकारी नियंत्रण)।

पंचम आधार – उच्च शिक्षा और भविष्य का संदर्भ (वैश्वीकरण और बाजारीकरण)।

“सा विद्या या विमुक्तये।” कोई भी शिक्षा जो व्यक्ति के अन्दर छिपे ‘स्व’ को जागृत नहीं करती एवं उसका आत्मविश्वास सुदृढ़ नहीं करती, वह उस व्यक्ति को भौतिक उपलब्धियों का फल तो प्रदान कर सकती है, परन्तु उसे सफल जीवन नहीं दे सकती। इस संदर्भ में संत श्री साईं दास महाराज का कथन ध्यान देने योग्य है—

“आज की शिक्षा मनुष्य को यांत्रिकता प्रदान करती है, आन्तरिकता नहीं। व्यक्ति में स्वतंत्र चिंतन जागृत करने की, हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में कोई प्रावधान नहीं”

यहाँ ध्यान देने की बात है कि मनुष्य यदि शरीर, प्राण, मन तक सीमित होता तो स्वतंत्र चिंतन, चेतना, की ज्यादा जरूरत न पड़ती। पर वह तो इससे अधिक है— मनुष्य एक विकसित चेतना का प्रतिनिधि है।

यहाँ श्री अरविन्द के विचार मार्ग दर्शी हैं—

“एक उद्देश्यहीन जीवन परम दुखदायी है। परन्तु ध्यान रहे, लक्ष्य के गुणों पर ही आधारित हैं जीवन के गुण। यह उद्देश्य उच्च, विराट, उदार और अहैतुक हो, तभी जीवन, व्यक्ति और उसके समाज के लिये अमूल्य होगा। यह उद्देश्य तभी प्राप्य है जब व्यक्ति स्वयं में पूर्ण होने की प्रक्रिया में हो।”

आखिर यह पूर्णता आये कैसे? वह कौन सी शिक्षा है जो पूर्णता प्रदान करती है।

प्रो० यशपाल (यशपाल समिति-2009) ने अपने प्रतिवेदन में जोर दिया कि ज्ञान को मुक्त कीजिए। उनका आशय है कि उच्च शिक्षा ब्यूरोक्रेसी से, बाबुओं से, यूजीसी, ए.आई.सी.टी.ई., एम.सी.आई., जैसी तेरह नियामक संस्थाओं की नोच-खसोट से मुक्त हो। पर प्रो० यशपाल

* पूर्व आचार्य – समाजशास्त्र एवं समाजकार्य (कानपुर विश्वविद्यालय)

यह नहीं स्पष्ट कर सके कि शिक्षा के शाश्वत लक्ष्य क्या हों या, शाश्वत मूल्य क्या हों, इस मुक्ति के बाद उच्च शिक्षा कहाँ पहुंचेगी?

मुझे श्री अरविंद आश्रम की अधिष्ठात्री, श्री माँ, का 'बुलेटिन ऑफ फिजिकल एजुकेशन' नवम्बर, 1950 का एक लेख, 'दि साइंस ऑफ लिविंग' अत्यंत प्रेरक लगता है, जिसमें उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य जीवन की पूर्णता बताया है और इस पूर्णता को प्राप्त करने के चार अनुशासन बताये हैं जो एक साथ चलते हैं। पहला है, चैत्य (साईकिक) अनुशासन, जो मनुष्य का मनोवैज्ञानिक केन्द्र है, जो ज्ञान प्राप्ति की उच्चतम पीठ है। इसलिये छात्र को इस केन्द्र या अनुशासन से साक्षात्कार करना प्रथम चरण है और यहीं से शिक्षा का उच्च सोपान प्रारम्भ होता है। श्री अरविंद कहते हैं कि चैत्य को प्राप्त करने के अनेक माध्यम विकसित हैं जैसे मनोवैज्ञानिक, धार्मिक, यांत्रिक। जो माध्यम जिसे उपयुक्त लगे, उसी से वह चैत्य को प्राप्त करने का प्रयास कर सकता है। ज्ञान की इस सर्वोच्च पीठ (चैत्य) को जानने के लिए बाह्य (अध्ययन और निर्देशन) और आंतरिक (एकाग्रता, ध्यान, प्राकट्य और अनुभूति) दोनों प्रकार के साधन हैं। **एक छात्र को हमेशा ध्यान रखना होगा कि वह शरीर, प्राण, मन से भी आगे कुछ है तभी वह ज्ञान का विस्फोट कर सकता है।** न्यूटन, आर्कमडीज, आईस्टीन, रामानुजम् से पहले वाराहमिहिर, आर्यभट्ट आदि ऐसे ही छात्र थे जिनमें स्फूर्णा बुद्धि (Intuition) विकसित थी।

ज्ञान की आंतरिक यात्रा को पूर्णता देने का अगला चरण है मानसिक विकास; क्योंकि ज्ञान प्राप्ति में मन साधक भी है और बाधक भी। मन प्रारंभिक (प्राकृतिक) अवस्था में संकीर्ण समझ, दृष्टि दोष, और सतही विचारों से ग्रस्त होता है। पर वह उत्तरोत्तर 'वाद' (थीसिस) और 'विवाद' (एण्टी-थिसिस) को, सावधानी पूर्वक किये गये शोध – अन्वेषण से 'संवाद' (सिंथिसिस) में परिवर्तित कर देता है।

संवाद (सिंथिसिस) प्रायः भ्रामक होते हैं, क्योंकि ये मन की उपजा हैं। आज ज्ञान-समाज, ज्ञान-विस्फोट की चर्चा होने लगी है। ज्ञान और जानकारी में मौलिक अंतर है। जानकारी मन के धरातल की फसल है और ज्ञान, विशुद्ध वैचारिक जगत से भी परे अनुभूति और अभिव्यक्ति से उपजा सत्य है। ज्ञान प्राप्ति हेतु मन के उच्छृंखल व्यवहार को शान्त करने का अभ्यास जरूरी है। इस अभ्यास का महत्वपूर्ण कदम है अपने पूर्वाग्रहों, परम्परागत सोच, पर नियंत्रण।

ज्ञान का तीसरा अनुशासन है प्राणिक। हम प्रायः भावुकता, कामनाओं और आवेगों के प्रवाह में बह जाते हैं और इसे शिक्षा का नाम दे देते हैं। यह ज्ञान को विनष्ट करता है। अतः इसका अनुशासन सबसे कठिन है। अधिकांश छात्र प्राणिक कमजोरियों के शिकार होते हैं। आन्दोलन, हड़ताल, तोड़फोड़, अशिष्टता, चरित्र-पतन, इसी प्राणिक कमजोरी के प्रतिफल हैं। इससे साम्प्रदायिक शिक्षा बनाम धर्म-निर्पेक्ष शिक्षा का विवाद फैला है। देख कर आश्चर्य होता है कि उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, विशेषीकृत-शिक्षा में भी प्रवेश आदि मुद्दों में जातिगत, धर्मगत आरक्षण है और बुद्धि प्रतिबंधित सी है। तब शिक्षा के लक्ष्य-चेतना का विकास बाधित होगा ही।

शिक्षा का चौथा आधार है शरीर। शारीरिक शिक्षा, शरीर को शक्तिशाली, नमनीय बनाती है। ऐसा कलेवर जो ज्ञान और चेतना का सक्षम माध्यम बन सके। **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्** शारीरिक शिक्षा ऐसी हो कि शरीर शासन न करे, बल्कि आदेश माने प्राण, मन और चैत्य (साईकी) का। तभी समग्र व्यक्तित्व निर्मित होगा।

इन चारों आधारों में चेतन सामंजस्य हो, हारमनी हो, तभी इन चारों आधारों के चार तत्व प्रेम (चैत्य), ज्ञान (मन), शक्ति (प्राण) और सौन्दर्य (शरीर) एकाकार होंगे और शैक्षिक पूर्णता प्राप्त होगी तथा व्यक्ति मुक्त होगा। यह तो हुआ शिक्षा का मूल लक्ष्य अर्थात् जीवन का विज्ञान।

आईए विचार करते हैं उच्च शिक्षा के दूसरे आयाम का अर्थात् उच्च शिक्षा को राष्ट्रीय अस्मिता से जोड़कर विकसित करने का मुद्दा। वैश्वीकरण, उदारीकरण और बाजारीकरण की इस सदी में, राष्ट्रीयता, देशभक्ति, असंगत सी लगती है, कुछ बुद्धि-जीवियों को। यह मुद्दा कुछ ज्यादा उलझा है परिवर्तन की आंधी में।

यह राष्ट्रीय अस्मिता क्या है? अन्य देशों की तुलना में यह विचार "संस्कृति-बहुल" भारत में भिन्न और गहन है। सच तो यह है कि भारत की अस्मिता राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति से परे विशिष्ट और अध्यात्मपरक है। शायद यही धारणा श्री अरविन्द को घोषणा करने के लिये प्रेरित करती है कि "भारत कोई नदी, पठार, जंगल, बस्तियों का संकुल, भूखण्ड नहीं है बल्कि जीवित जागृत दिव्य माँ है।" डॉ० लकदास डिमेल, कलकत्ता के 15वें बिशप नें, 14 अगस्त, 1962 में एक ऐतिहासिक संगोष्ठी में कहा था कि **"भारत को एक बात सबसे अलग करती है, वह है उसकी पांच हजार वर्षों की अनथक आध्यात्मिक खोज।"** यही भारत की राष्ट्रीय शैक्षिक धरोहर है जो सारे विश्व के ज्ञान का आधार बन गई और आज मानव मात्र की धरोहर। अध्यात्म से ही उपजे हैं विविध शैक्षिक आयाम, जिनका लक्ष्य सत्यान्वेषण (क्वेस्ट फार ट्रुथ) है। इसी की शाखायें हैं विज्ञान, दर्शन, गणित, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, यांत्रिकी, लोकतंत्र आदि। डॉ० राधाकृष्णन ने कहा है कि **"भारत धर्म प्रधान है और भारतीय इतिहास का मर्म है आध्यात्मिक सहजीविता। इसी अर्थ में विविध आक्रान्ता यहीं की माटी में बिंध गये।"** स्वामी विवेकानन्द ने भारत की अस्मिता के संदर्भ में 1893 में आहूत शिकागो की धर्म संसद में कहा था **"मुझे गर्व है ऐसे धर्म, देश से सम्बद्ध होने पर, जिसने सारे विश्व को सहिष्णुता और वैश्विक स्वीकृति का पाठ पढ़ाया।"**

यहाँ महामना मालवीय जी और गांधी जी की चिंता को भी देखना होगा। इन दोनों महापुरुषों ने राष्ट्रीय अस्मिता को श्री अरविन्द की तरह स्वदेशी के विचार से जोड़ा है। पर दोनों के स्वदेशी में कुछ फर्क है। गांधी जी ने स्वदेशी के लिए जरूरी माना कि विदेशी का बहिष्कार ही न हो बल्कि उसे नष्ट किया जाये, उसे जला दिया जाये। यह विदेशी विचार और विदेशी वस्तु— दोनों के बहिष्कार का मार्ग था, जिससे राष्ट्रीयता और उसकी पहचान को जागृत किया जा सके। परन्तु मालवीय जी की भावी दृष्टि शायद एक चरण आगे थी। उन्हें देश की गरीबी, अभाव और भावी वैश्विकता का मानो भान अधिक था। वे किसी वस्तु को नष्ट न करके उसके रूपान्तरण में, विश्वास करते थे। यह मालवीय जी के वैश्विक-राष्ट्रवाद का परिचायक था। इसी से प्रभावित मालवीय जी ने कहा था— **"स्वदेशी द्वारा हम बिना विरोध और क्षति के वही उद्देश्य प्राप्त करेंगे, जो विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार से करेंगे। अतः विदेशी कपड़ों की होली न जलाकर हम गरीब जनता की गाढ़ी कमाई की उपयोगिता प्राप्त करते हुए स्वदेशी के पूर्ण प्रयोग द्वारा विदेशी वस्त्रों का स्वतः परित्याग कर सकते हैं।"** मालवीय जी ने राष्ट्र की पहचान को बौना न करके व्यवहारिक और शैक्षिक बनाया। **इस दृष्टि से श्री अरविन्द, गांधी और मालवीय का चिन्तन एक था कि शिक्षा की शुरुआत अपनी मातृभाषा से हो। इससे राष्ट्रीय**

चरित्र निर्मित होगा। राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय-चरित्र, राष्ट्रभक्ति और राष्ट्र-निर्माण से राष्ट्रीय-अस्मिता बचेगी। इसलिए आज जरूरी है उच्च शिक्षा के नियंता ऐसा चिन्तन विकसित करें।

आज उच्च शिक्षा में शिक्षक-छात्र सम्बन्धों की चर्चा गरम है। इंटरनेट के जमाने में, ज्ञान विस्फोट हुआ। इस विस्फोट से गुरु-शिष्य परम्परा तो संकट में है ही, साथ ही शिक्षा के अमानवीय प्रयोग भी बढ़े हैं। प्रो० ए.के. सरन इस संबंध में ब्रिटिश उपनिवेशवाद को सर्वाधिक जिम्मेदार मानते हैं। एक दशक पूर्व से भी पहले प्रो० सरन, ने इलाहाबाद म्यूजियम में बोलते हुए कहा था कि "उपनिवेशवाद ने भारत की आत्मा के टुकड़े कर दिये हैं।" जिसकी वजह से भारतीय ज्ञान परम्परा और गुरु-शिष्य परम्परा खण्ड-खण्ड हो गयी। विशेषीकरण विश्वविद्यालयों का मुख्य स्वर बन गया। यह औद्योगिक समाज की स्वाभाविक परिणति थी। प्रो० सरन ने कहा कि "भारत का शैक्षिक संकट स्पष्ट एवं सारगर्भित सिद्धांतों के बिना ही जन्मी इस पृथक्कीकरण एवं विशेषीकरण की फसल है। यही विशेषीकरण, बाद में शिक्षा जगत में विविध पेशे के विवेचना का आधार बना।" युवा विचारक डॉ० बद्दीनारायण ने विशेषीकरण को छात्र शक्ति और छात्र राजनीति का कारण माना है। जो सेवा, ज्ञान और तप की जगह एक पेशा का रूप ले चुका है।

शिक्षक-छात्र संबंध बाजारीकरण के युग में अर्थहीन से लगने लगे हैं। नव-पदार्थवादियों का कहना है कि बढ़ती भूख-प्यास तथा शक्ति और सत्ता के कलह के इस दौर में अन्तर-मंथन, गहनता, सामंजस्य सेवा जैसे सनातन मूल्यों की चर्चा ही क्यों करें। प्रो० सरन का संकेत मैकाले की 'बाबू कल्चर' की ओर है। जहां ज्ञान-समाज (वैश्विक समाज) की जगह ब्यूरोक्रेसी शासित 'यांत्रिक-समाज' स्थापित हो जाता है।

ऐसी स्थिति में शिक्षक-शिष्य के आचरण, ज्ञान के स्तर, चरित्र की अभिव्यक्ति में बदलाव स्वाभाविक है। प्रो० यशपाल का मानना है कि **आज भी यदि शिक्षक, राजनीति और धड़ेबाजी से ऊपर उठकर जवाबदेही और कर्तव्य बोध को जगा लें तो छात्रसंघ, छात्र राजनीति, छात्रशक्ति और उच्चशिक्षा विरोधाभासी न रह जायेंगे।** डॉ० बद्दीनारायण का मानना है कि आजादी की लड़ाई के दौरान तथा आजादी के बाद दो दशकों तक छात्रसंघ राष्ट्रीय मुद्दे उठाते रहे। अब उसके प्रश्न और सरोकार जातीय, मजहबी, कुर्सी की सत्ता में बंधकर बोन्साई हो गये हैं, इन सभी बौने सरोकारों को आज के छात्रसंघ सशक्तिकरण, मुख्यधारा और प्रगतिवाद का नाम देते हैं। बद्दीनारायण इसे तुलनात्मक अधःपतन ही मानते हैं और विश्वविद्यालयी संस्कृति के लिए भस्मासुर। छात्र-शिक्षक विचार में असंतुलन है। दोनों ही, ज्ञान-समाज की रचना के प्रति कितने वफादार हैं यह तो अब सबको पता लग गया है। लेकिन वृक्ष अभी हरा है। आशावादी यह देश इन दोनों महाशक्तियों (छात्र एवं शिक्षक) के पुनर्जागरण की प्रतीक्षा कर रहा है।

प्रचार के इस युग में शिक्षक-छात्र संबंध स्वार्थगत हो गये हैं। न लड़का पढ़ता है, न अध्यापक पढ़ाता है— यह टिप्पणी हर जगह सुनने को मिलती है। ग्राम्सी कहते हैं कि "यह शिक्षा में सिद्धान्तहीनता, अवसरवाद, निरंतरता की अनुपस्थिति के कारण होता है।"

श्री अरविन्द दर्शन में 'शिक्षक-छात्र' संदर्भ कुछ भिन्न हैं। उनका कहना है शिक्षा का प्रथम सिद्धान्त है कि **"कुछ भी नहीं सिखाया जा सकता। क्योंकि शिक्षक एक निर्देशक, इन्सट्रक्टर, एक काम लेने वाला स्वामी नहीं है, बल्कि एक सहायक है, एक गाइड है, एक मित्र है। यहाँ छात्र को स्वतःस्फूर्त ज्ञान के प्रति स्वाभाविक खुलना होता है। माता-पिता और शिक्षक की जिद बच्चे पर थोपना अप्राकृतिक होगा, दकियानूसीपन होगा।"** प्रो० डी. एस. कोठारी

(कोठारी आयोग) ने इस विचार को विस्तार से अपनी रिपोर्ट में दर्ज किया है। प्रो० यशपाल ने हाईस्कूल बोर्ड परीक्षा को निरस्त करने के संदर्भ में तथा विज्ञान, तकनीकी एवं समाज-विज्ञान की शिक्षा को एक साथ पढ़ाने के संदर्भ में संस्तुतियाँ दी हैं। इसे उन्होंने ज्ञान की आजादी की संज्ञा दी है। मुझे इतना ही कहना है कि यदि यह विचार लागू हुआ तो शिक्षा में पुनः वैदिक क्रान्ति आ सकती है। इससे शिक्षक-छात्र संबंध 'गुरुकुल' का रूप लेंगे जो आज भी अपने मूल में वैश्विक है।

शिक्षा में, विशेष रूप से उच्च-शिक्षा में वैश्विक आधुनिक के प्रयोग की चर्चा जोरों पर फिर से उठी है। आज अंतरराष्ट्रीय खेलकूद, अन्तरराष्ट्रीय मौद्रिक नीति, राजनैतिक, आर्थिक संगठन, अन्तरराष्ट्रीय व्यवसाय और बैंकिंग का युग है। तब शिक्षा में भी उसका प्रभाव पड़ना ही है। अलेक्स इंकलेस ने इसी संदर्भ में कहा था कि "आधुनिकीकरण, नये विचारों और अभिनव प्रयोगों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति, विचारों को अभिव्यक्त करने की तत्परता, समय का ज्ञान, जो मनुष्य को भूत की अपेक्षा वर्तमान और भविष्य के प्रति रुचि, समय-पालन का सही ज्ञान, योजना-निर्माण में तल्लीनता, संगठन और कर्म निपुणता, तकनीकी व विज्ञान में विकास और समान न्याय वितरण में विश्वास पैदा करना है।" शिक्षा में जितना जरूरी है उतना ही इतिहास परकता अर्थात् भूत से जुड़ना चाहिए। डॉ० जाकिर हुसैन ने कहा था कि "भूत की बलिवेदी से हमें प्रज्वलित आग लेनी चाहिए न कि जली राख।" आजादी के बाद 1948-49 में डॉ० राधाकृष्णन आयोग आया। इसमें परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन और सांस्कृतिक विरासत को कायम रखने के साथ शिक्षा के व्यवसायीकरण पर जोर था। पर इस रपट में आधुनिकता से ज्यादा परंपरा हावी थी। 1952-53 में डॉ० ए. लक्ष्मण स्वामी मुसालिकर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग बना। इसमें रुढ़िगत शिक्षा को नकार कर आधुनिकता पर पूरा बल दिया गया। यह रपट भी अधूरी रही। इसलिए 1964-66 में डॉ० डी. एस. कोठारी के निर्देशन में शिक्षा-आयोग बना। इसमें विस्तार से शिक्षा, विशेष रूप से उच्च-शिक्षा की समीक्षा, संभावित परिवर्तन और भावी दिशा की समीक्षा और संस्तुतियाँ हैं।

राजीव गांधी के समय नई शिक्षानीति (किरीट जोशी की अध्यक्षता में और श्री अरविंद आश्रम शिक्षा पद्धति के आलोक में समग्र शिक्षा नीति) बनायी गयी। पर निष्पादन और लागू होना शेष रह गया। मुख्य संकट तो निष्पादन का है। आज आवश्यकता है शिक्षा के वैश्विक स्वरूप की। तकनीकी और विज्ञान के विस्फोट से यह जरूरी हो गया है कि "ज्ञान को हर दिशा से आने दो।" "आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः" ऋग्वेद (1/89/1) का यह मंत्र प्राचीनतम् होते हुए भी पूर्णरूपेण वैश्विक और आधुनिक है। श्री अरविंद के शिष्य के. एम. मुंशी ने "भारतीय विद्या भवन" की स्थापना के लिये इस मंत्र को शिक्षा की आत्मा के रूप में अंगीकार किया और ऋत, सत्य, यज्ञ और तप को शिक्षा के चार मूल्यों के रूप में स्वीकारा। डॉ० राधाकृष्णन भी आधुनिक शिक्षा की एकांगिता और आत्महीनता से चिंतित थे। जब वे यह कहते हैं कि शिक्षा का लक्ष्य केवल बुद्धि कौशल ही नहीं है, बल्कि हृदय में ज्योति और तेज भरना भी है। "तेजस्विनावधीतमस्तु"।

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने वैश्विकता की व्याख्या करते हुए कहा है कि "वास्तविक वैश्विकता अपने घर की दीवारों को तोड़ डालने से नहीं आएगी बल्कि अतिथियों और पड़ोसियों को सत्कार देने से आएगी।" तात्पर्य यह है कि शिक्षा मैकाले की मंशा से वैश्विक नहीं होगी, या

‘प्रत्यक्ष विदेशी निवेश’ (एफ.डी.आई.) से भी नहीं। बल्कि शिक्षा को आन्तरिक संसाधनों से लैस करना होगा। इसकी नींव भारतीय होगी— मंजिलें वैश्विक हो सकती हैं।

शिक्षा की अधिकांश चिंता और संदर्भ भविष्य को लेकर है। यह शिक्षा का चरम संदर्भ है। विशेष रूप से उच्च शिक्षा भविष्य के दश को झेल रही है। जिस मुद्दे को भविष्य सता रहा हो, स्पष्ट है कि उसका वर्तमान ज्यादा विकृत है। जो मुख्य मुद्दे हैं उनमें प्रमुख हैं (क) स्ववित्त पोषित संस्थाएं और उनका असंतुलित बाजारीकरण, (ख) दूरस्थ शिक्षा का निहायत सतहीपन, जिसमें ज्ञान की बात तो छोड़िए, सामान्य जानकारी भी नहीं मिलती। (ग) डीम्ड विश्वविद्यालयों की संक्रान्ति। (घ) उच्च शिक्षा में राजनीति का राहुकाल एवं ब्यूरोक्रेसी का अतिरिक्त हस्तक्षेप।

संक्षेप में इन बिन्दुओं पर मंथन आवश्यक है। (क) स्ववित्त पोषित संस्थाएँ अब देश में 21000 पार कर गयी हैं। उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक हैं। यू.पी. में पिछले 15 वर्षों में विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध महाविद्यालय, प्राथमिक विद्यालयों से भी अधिक खुल गये हैं। इन कालेजों में पूरे प्रदेश में दस प्रतिशत बच्चे भी पढ़ने नहीं जाते। इनके अधिकांश प्रवेश फर्जी होते हैं। पिछले वर्ष प्रदेश के दस जनपदों के एक सौ महाविद्यालयों के सर्वेक्षण से स्पष्ट हुआ कि यहाँ न तो ठीक भवन हैं न लाईब्रेरी, न अध्यापक (केवल कागज में हैं), न पढ़ने वाले छात्र। समाज कल्याण विभाग का अरबों रुपया इन स्ववित्त पोषित संस्थाओं की जेब में पहुँचता रहा है। अभी इसी वर्ष (2012) सरकार की आँख खुली है, और सुना है कि अब कल्याण धनराशि सीधे छात्रों को मिलेगी। लुटेरे प्रबंधकों की, इस कदम से हृदय गति रुक रही है। बाजारों के भी कुछ नियम होते हैं— इन स्ववित्तपोषित दुकानों के कुछ भी नहीं। (ख) देश में दूरस्थ शिक्षा का प्रयोग इंदिरागांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से प्रारम्भ हुआ। आज ऐसी अर्थहीन, दूरस्थ शिक्षा, लगभग— 22 विश्वविद्यालय परोस रहे हैं। सैकड़ों केन्द्रों में छात्र—कौंसिलिंग में भी नही पधारते। कम से कम उत्तर—भारत के केन्द्रों में तो नहीं। (ग) डीम्ड विश्वविद्यालयों की व्यथा—कथा तो अभी हाल में ही उभरी है। चौवालीस ऐसे विश्वविद्यालय सूचीबद्ध हुए हैं, जो विश्वविद्यालयी शिक्षा की अधिकांश शर्तें पूरी नहीं करते। मामला सर्वोच्च न्यायालय में है। इसी को दृष्टि में रखकर कपिल सिब्बल ने प्रो० यशपाल समिति बनाई। प्रो० यशपाल के तेरह प्रमुख सुझाव भी आ गये। प्रमुख सुझाव है कि चुनाव आयोग की तरह ही देश में उच्च शिक्षा का राष्ट्रीय आयोग बने। पहले से चल रही नियामक संस्थाएँ जैसे— यू.जी.सी., ए.आई.सी., टी.ई., एन.सी.एच.ई.आर., एम.सी.आई. को या तो भंग कर दिया जाये, या ये सभी राष्ट्रीय आयोग के नियंत्रण में कार्य करें। (घ) परन्तु ये क्रान्तिकारी कदम तब तक लागू नहीं होंगे जब तक उच्च शिक्षा को ब्यूरोक्रेसी और राजनेताओं की गुलामी से स्वतंत्रता नहीं मिलती।

एलविन टाफलर ने — “फ्यूचर शाक” में शिक्षा को भी भविष्य में रोपित करते हुए कहा है कि “जो लोग शिक्षा सुधार में “पैचवर्क” कर रहे हैं वे भविष्य के संदर्भ को समझते ही नहीं।” ये बात परिपूर्णानन्द वर्मा की पुस्तक “पतन की परिभाषा” में इंगित है कि भ्रष्टाचार, चारित्रिक पतन और स्त्रियों का शोषण अशिक्षितों से अधिक शिक्षित करते हैं। डॉ० राधाकृष्णन शिक्षा को ब्रह्मचर्य से जोड़ते हैं। टैगोर शिक्षा को त्याग, सेवा, तप से जोड़ते हैं। गांधी आन्व्योदय की शिक्षा को लेकर चलते हैं और श्री अरविंद तथा स्वामी विवेकानन्द शिक्षा को मानव विकास की पूर्णता का आधार मानते हैं। भविष्य भूत के गर्भ से उपजता है। मानव इतिहास के प्रथम विधि निर्माता मनु ने लिखा है—

“वित्तं बन्धुर्वयः कर्म, विद्या भवति पंचमी।

एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्।।”

अर्थात् मानव, जीवन में पाँच आधारों पर मान्यता और सम्मान प्राप्त करता है यथा— वित्त (धन सम्पदा), बन्धुत्व (रिश्तेदारी), वय (उम्र), कर्म (पेशा या व्यवसाय), और पाँचवीं विद्या। यह क्रमशः एक दूसरे से अधिक मान्य हैं। उस काल में विद्या का सर्वोच्च मूल्य था, और वित्त का न्यूनतम मूल्य। आज ठीक इसका उल्टा संस्तरण है अर्थात् धन सबसे पहले और ज्ञान सबसे बाद में।

आश्चर्य होता है कि अभी भी शिक्षा में सर्वांगीण परिवर्तन की जगह टुकड़े-टुकड़े में बदलाव की बात होती है। 3 जनवरी 2013 को कलकत्ता में राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस में देश के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के भाषण पल्लवग्राही लगे। “विज्ञान का विकास गरीबों के लिए, गांव वालों के लिए, ऊर्जा के लिए हो आदि-आदि।” सुनने में अच्छा लगता है, पर होता नहीं। वही संकट निष्पादन का, चरित्र का।

यक्ष प्रश्न है कि जो लोग उच्च शिक्षा से जुड़े हैं वे कितने संतुष्ट हैं अपनी परिस्थितियों से, शिक्षा के लक्ष्यों से, उनकी प्राप्ति हेतु किये गये निष्पादन से। भाभा-मुम्बई, राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान-बैंगलूर, आई.सी.एस.आर, डी.आर.डी.ओ. के बहुत से वैज्ञानिकों से मिलने का, उनकी समस्यायें सुनने का मौका मिलता है। तब लगता है, क्या भारत में 2020 का स्वर्णयुग लाने का सपना, सपना ही रह जायेगा? आज विश्व की 200 श्रेष्ठ शैक्षिक संस्थाओं में, भारत की एक भी संस्था क्यों नहीं है? सोचना होगा।

योजनायें श्रेष्ठ, निष्पादन निकृष्ट। कारण—चरित्र का संकट। तो क्या यह माना जाए कि उच्च शिक्षा अभी तक आकड़ों के कठघरे में बंद हैं? कुलपति की नियुक्ति, नैक की टीम के गठन, विद्या मंदिर के बड़े पदों पर आसीन लोग, उनकी योग्यता में दोनों गुण-मूल्य हों — वे यंत्रविद् (Master of science and technology) हों और आत्मविद् (Master of spirituality) भी हों। अन्यथा ज्ञान का विस्फोट तो न होगा, अज्ञान का आयोग अवश्य बन जायेगा। सैम पित्रोदा की चिंता से बुद्धिजीवी जुड़ सकता है।

प्रो० ई.सी.जी. सुदर्शन ने कहा था कि “विज्ञान के स्वभाव” (Tempar of science) में छह आधार भूत सिद्धान्त होते हैं। यथा 1— कार्यकारण विवेक (Rationality) 2— अनहंकार या विनम्रता (Humility) 3— स्वतंत्र अन्वेषण (Innovation) या नवोन्मेष 4— निर्दक्षिण्य (Relent lessnes) 5— आर्जवम (Integrity) 6— प्रतिभा (Creativity)। आज शिक्षा से ये सिद्धांत गायब हो रहे हैं।

पाश्चात्य दार्शनिक हाबहाउस और दुर्खेम, उच्च शिक्षा को “सामाजिक तथ्य” से जोड़ते हैं। उनका ‘तथ्य’ व्यक्ति और समूह के सामंजस्य और सहकारिता पर आधारित है अर्थात् व्यक्ति निर्माण और समाज निर्माण एक साथ हो। आजादी के बाद— कई अवसर मिले कि शिक्षा या उच्च-शिक्षा पटरी पर आ जाये। पर स्वार्थ और उपेक्षा की शिकार हो गयी शिक्षा। संविधान में ‘साक्षरता की चर्चा है’— शिक्षा की नहीं। श्री अरविंद ने एक पत्र में कहा था कि “यह कैसी शिक्षा है कि व्यक्ति ईश्वर से तो प्रेम करता है पर उसकी अभिव्यक्ति ‘मानवता’ से नहीं। आखिर वह किससे प्रेम करता है? क्या मनुष्य के अन्दर ईश्वर नहीं है?” इस प्रकाश में आज

उच्च शिक्षा में तकनीकी-क्रान्ति, सूचना-क्रान्ति, साईबर-क्रान्ति का पूरा लाभ उठाकर कम से कम एक हजार संस्थाओं में 'समग्र-शिक्षा नीति' को परवान चढ़ाना होगा, जिसमें संस्कृति (अतीत) हमारी नींव हो, वर्तमान हमारा उपादान हो, भविष्य हमारा लक्ष्य और शिखर हो। राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति ऐसी हो जिसमें हर एक को अपना उचित और स्वाभाविक स्थान मिले। तभी आज का उपभोक्ता पुत्र, भविष्य का अमृत-पुत्र बन सकेगा। भारत को 2020 की महाशक्ति बनने की अभीप्सा, पूर्ण हो।

संक्षेप में शिक्षा में यह चिंतन प्राचीनतम से अधुनातन की काल-यात्रा है।

संदर्भ ग्रंथ एवं लेख:

1. Sri Aurobidno, 'The Mother on Education.
2. Life of Sri Aurobidno – K.R. Srinivas lyngar.
3. मनुस्मृति।
4. Sai Letter – "Abhipsa".
5. S. Radhakrishnam – 'Education and Religion'.
6. जी.सी.पाण्डे – भारतीय संस्कृति की सनातनता।
7. R.K. Mukerjee – 'Ancient Indian Education'.
8. Rabindranath Tagore 'Poetic Philosophy of Education'.
9. मालवीय जी का शिक्षा दर्शन – तिवारी और सिंह।
10. गांधी का बी.एच.यू. में सम्बोधन – 1942, जनवरी।
11. आयोगों की रिपोर्ट : राधाकृष्णन, डॉ० जाकिर हुसैन, मुदालियर, डी. एस. कोठारी आदि।
12. नई शिक्षा नीति – किरीट जोशी।
13. यशपाल कमेटी रिपोर्ट 2012।
14. E.C.G. Sudorsan- 'Temper of Science'.
15. Alwin Toffer "FUTURE SHOCK".
16. डॉ० बद्दीनारायण – 'छात्रशक्ति – छात्र – राजनीति'।
17. Prof. K.P. Mishra- "Excellence in Research.

उच्च शिक्षा : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं चुनौतियाँ

प्रो० हेरम्ब चतुर्वेदी*

एक नितांत महत्वपूर्ण वक्तव्य लाल-बाल-पाल की त्रयी में से विपिनचन्द्र पाल ने दिया था, जो आंग्ल-हितों के विरुद्ध होने के कारण, आंग्ल-शासन एवं शिक्षा-नीति में पले-बढ़े शिक्षितों ने न केवल नापसन्द किया, अपितु, नजर अन्दाज भी किया। राष्ट्रवादी सपूत विपिनचन्द्र पाल के अनुसार, "भारत का साम्राज्यवाद और इसकी शोषण व्यवस्था से पैदा हुई शिक्षा व्यवस्था चाहे जो भी रहती, भारतीय बुर्जुआजी का उदय और ब्रिटिश बुर्जुआजी के प्रभुत्व के खिलाफ इसकी बढ़ती हुई प्रतिद्वन्द्विता अवश्यम्भावी थी। अगर भारतीय बुर्जुआजी को दूसरी सारी विचारधाराओं से अलग संस्कृत में लिखे गये वेदों की ही शिक्षा मिलती रहती तो उन्हें वहीं अपने संघर्ष के सिद्धान्त और नारे मिल जाते।"

इससे दो-तीन प्रस्थापनायें, सुस्पष्ट होती हैं, जिससे हम अपनी बात शुरू करना चाहेंगे! प्रथम, तो यह कि, "यह सुस्थापित हो चुके शोध का परिणाम है, कि, वह सोच या विचार अब निष्प्राय/निष्प्रभावी हो गया है, जब यह कहा जाता था, कि, आधुनिक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, शिक्षा-पद्धति का प्रत्यक्ष व अनन्य परिणाम था।" अतः राष्ट्रवाद, आंग्ल शिक्षा का प्रभाव नहीं था। दूसरी प्रस्थापना, इसी से निकलती है, कि, 'कोई भी राष्ट्र असंतोष, अनास्था और उससे उत्पन्न विरोध-प्रतिरोध के बिना किसी दूसरे राष्ट्र पर दीर्घकाल तक शासन नहीं कर सकता।' तीसरी, अन्तिम किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रस्थापना यही थी, कि भारत में राष्ट्र और 'राष्ट्रवाद' की अवधारणा हमें 'वैदिक वाङ्मय' में/से ही प्राप्त होती है। प्रथम लिखित साहित्य ऋग्वेद की ऋचाओं में ये शब्द पूरी अवधारणा को अभिव्यक्त करते हैं। इन तीन प्रस्थापनाओं के साथ, एक पूरक प्रस्थापना भी है, जिसे कोई विवेकवान् व्यक्ति नकार नहीं सकता। यदि, राष्ट्रीय-आन्दोलन मात्र आंग्ल-शिक्षित लोगों तक सीमित रहता तो, वह कभी जनांदोलन नहीं बन सकता था।

एक आंकड़ा इस बात की पुष्टि करता है, अतः एक नजर उस पर भी डालना उचित होगा। इसके अनुसार आंग्ल-शिक्षा के प्रसार-प्रचार के उपरान्त भी 1930 ई० तक भारत की कुल जनसंख्या के मात्र दो प्रतिशत व्यक्ति ही अंग्रेजी बोल व समझ सकते थे। ये प्रायः शिक्षित-व्यवसायी वर्ग के लोग शहरों के निवासी थे। अतः हमारा शिक्षित वर्ग कितना था व कैसा था, यह सुस्पष्ट है। वे तो वही सोच-विचार एवं अभिव्यक्ति कर सकते थे, जो उनको पढ़ाया-समझाया गया। अतः औपनिवेशिक-साम्राज्यवादी शिक्षा के प्रभाव में, वे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और, राष्ट्रीयता को भी आंग्ल-शिक्षा के प्रभाव से सम्बद्ध करते हैं।

वस्तुतः अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक, भारतीय शिक्षा-व्यवस्था प्राचीन परम्पराओं का अनुपालन करती रही। प्रारम्भिक काल से ही, प्रत्येक मानव-समाज में धर्म ही शिक्षा का आधार था। वही बताता था, क्या पाप है, क्या पुण्य; किस मार्ग से स्वर्ग और, किससे नरक मिलता है। अतः 'मूल्यों' को वह ही समाज में प्रचारित-स्थापित करता था। अतः शिक्षण-संस्थायें भी धार्मिक संस्थाओं से ही उपजी और उसी से सम्बद्ध रहीं। जहाँ मंदिर था वहीं पाठशाला, जहाँ मठ वहीं

* मध्यकालीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

विहार, जहां मस्जिद वहीं मक्तब, और जहां चर्च वहीं स्कूल। यही व्यवस्था भारत में भी, चलती रही, यूरोप के व्यवसायिक एवं औद्योगिक क्रान्तियों ने इसके स्वरूप को परिवर्तित किया और साथ ही, उनके विचारों एवं दृष्टिकोण को भी। अतः वे अपने प्रभुत्व एवं साम्राज्य के सातत्य/अविरलता के आकांक्षी होकर, नस्लीय श्रेष्ठता के सिद्धान्त को पुष्ट करने वाली शिक्षा पर ही बल देने लगे। फिर, जब अंग्रेज भारत में आए, तब भी वे सिर्फ बंगाल, बम्बई एवं मद्रास के विषय में ही जानकारी प्राप्त कर पाये थे। आईए एक झांकी प्रारम्भिक वर्षों की ले ली जाये।

देशी शिक्षा सम्बन्धी जांच पहले-पहल मद्रास के गवर्नर टामस मुनरो द्वारा 1822 ई० में कराई गयी थी। इसके अनुसार, प्रत्येक 500 व्यक्तियों पर एक विद्यालय था; बम्बई में 1823 से 1825 तक गवर्नर स्टुअर्ट एलफिस्टन ने जांच करवाई और उसमें यह स्पष्ट होता है कि ये विद्यालय मंदिरों, शिक्षकों या सम्मानित लोगों के निवास-स्थानों में चलते थे। इसी प्रकार, 1835 से 1838 के मध्य ऐडम ने बंगाल व बिहार में सर्वेक्षण करके बताया था, कि वहां प्रत्येक 400 व्यक्तियों पर एक विद्यालय था! यहाँ, एक बात और ध्यान देने की थी, कि प्रत्येक गांव में एक ग्रामीण विद्यालय तो था ही, बड़े गाँवों में दो और उससे अधिक विद्यालयों के भी साक्ष्य मिलते हैं।

आगे बढ़ने से पूर्व बस एक 'पंक्ति' को इन पंक्तियों का लेखक अनुरेखित करके, आगे अग्रसर होना चाहेगा।

यदि, हमें प्राचीन सभ्यताओं-संस्कृतियों यथा, चीन, सुमेर, मोसोपोटामिया, मिस्र आदि के अध्ययन हेतु पुस्तकालयों-संग्रहालयों में ही केन्द्रित रहना पड़ेगा, जबकि, ए. एल. बाशम जैसे विद्वान के अनुसार, भारत के घरों में वैदिक ऋचाओं की अनुगूँज आज भी उस जीवन्त संस्कृति का जीवित रूप प्रस्तुत करती है। यदि ये परम्परागत विद्यालय न होते, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, तो क्या मूल्य व प्रतिमान स्थापित करने वाली मूल्यवान शिक्षा का अस्तित्व सुरक्षित रहता?

II

आइए, अब जो शिक्षा प्रणाली स्थापित हुई और, जो 'आधुनिक विश्व' की आवश्यकतानुसार, चल रही है, उस ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया जाये। वस्तुतः यह शिक्षा-प्रणाली औपनिवेशिक साम्राज्यवाद की देन थी और 'नव-औपनिवेशिक' युग में भी उतनी ही प्रासंगिक है, अतः 'उदारीकरण' और 'भूमंडलीकरण' से लेकर, पूर्ववर्ती 'आधुनिकीकरण' तक के लिए उसे ही उपयुक्त माना गया था। क्यों? क्योंकि, औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उत्पन्न विश्व -व्यवस्था उसी पर आधारित थी और वही, उसकी अविरलता को सुनिश्चित भी कर सकती थी। अतः उसी व्यवस्था को पुष्पित, पल्लवित किया गया, 'वर्ल्ड बैंक' से लेकर 'यूनीसेफ' (Unicef) तथा 'यूनेस्को (Unesco) की योजनाओं के तहत।

यहां पर भी हम शिक्षा, सर्व-शिक्षा, एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की मांग करने वाले गोपाल कृष्ण गोखले के विचार से, अपनी बात शुरू करना चाहेंगे। गोखले के विचारानुसार, "जनशिक्षा की उपेक्षा से यह स्पष्ट है कि भारत के नए शासक इस देश के सामाजिक उत्थान के लिए यहां नहीं आए थे। अंग्रेजी को इतना महत्व देने का कारण यह था, कि, वे स्वभावतः यह चाहते थे कि शासन में कम खर्च हो। हर क्लर्क और छोटे सरकारी अफसर को इंग्लैण्ड से बुलाना पड़े, तो इससे यह आसान होगा कि यहीं निम्न श्रेणी के अफसरों का वर्ग तैयार किया जाये। अतः इस शिक्षा-प्रणाली की विशेषता मध्यमवर्गीय भारतीय नवजवानों पर ब्रिटेन के गौरव

व समृद्धि का प्रभाव डालना तथा, ब्रिटिश अफसरशाही की आवश्यकतानुरूप, सुयोग्य नौकर बनाना।" वास्तव में, उपर्युक्त शिक्षा-प्रणाली की विशेषता एवं विशेष परिणाम था, कि, इसमें शिक्षित भारतीय नवयुवक स्वयं को अधिक महत्वाकांक्षी, योग्य व उच्च समझता था। वह अपने विचारों को नई भाषा एवं आधुनिक शैली में अभिव्यक्त कर सकता था, अतः वह अन्य अशिक्षित भारतवासियों से स्वयं को भिन्न व उच्च समझता एवं उस भावना पर अभिमान करता था।

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक तो देशी शिक्षा-पद्धति अथवा 'परम्परागत शिक्षा-प्रणाली' यथावत चलती रही, किन्तु, इसके उपरान्त इसका स्थान एक नितांत, 'विदेशी' अथवा 'आंग्ल' या यों कहिए, 'औपनिवेशिक शिक्षा-प्रणाली' ने ले लिया, किन्तु, ऐसा प्रतीत न हो, अतः उसे नए नामकरण से सुशोभित किया "आधुनिक शिक्षा नीति"। अतः अब पुरातन एवं नवीन शिक्षा प्रणालियों के मध्य एक विवाद प्रारम्भ हो गया, जिसमें अन्ततः, जैसा कि, होना ही था, नवीन/आंग्ल शिक्षा - प्रणाली के समर्थकों को सफलता प्राप्त हुई। अंग्रेजों का उद्देश्य स्पष्ट था, "यदि किसी देश को सदैव दास रखना है, तो उसके साहित्य, संस्कृति एवं शिक्षा का विनाश करना चाहिए।" नई शिक्षा-पद्धति का उद्देश्य था आंग्ल-भाषा में विशुद्ध पाश्चात्य ज्ञान का प्रचार-प्रसार। अतः देशज शिक्षा-संस्थाओं के पुनरुत्थान की योजनाओं की ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश पार्लियामेंट में पूर्णतया उपेक्षा की गई। वे भारतीय, जो या तो नई पद्धति के अधीन शिक्षित हुए थे अथवा उसके लोगों को महत्वपूर्ण मानते थे, इस ब्रिटिश शिक्षा-प्रणाली के अंध-भक्त एवं पूर्ण समर्थक बने।

वस्तुतः विदेशी शिक्षण-प्रणाली से शिक्षण का कार्य, सीमित रूप में, भारत में विदेशी व्यापारियों के साथ शुरू हो जाता है। सर्वप्रथम साक्ष्य 1706 ई० का है, जब डेनमार्क के मिशन के प्रचारकों (मिशनरियों) ने दक्षिण भारत में शिक्षण, धर्म-प्रचार एवं धर्मांतरण के दृष्टिकोण से प्रारम्भ किया। इसमें अग्रणी थे जीगेन-बेल्स एवं फ्ल्यूशा; किन्तु, बंगाल में शिक्षण-कार्य को आंग्ल ईस्ट इण्डिया कम्पनी का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। अन्ततः 1799 में डॉ० करे, बॉर्ड तथा मार्शमैन की त्रयी ने सीरामपुर में अपने प्रयासों से शिक्षण-कार्य का दायित्व सम्हाला। 1813 ई० तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की व्यवसायिक नीति, अपने आर्थिक हितों को साधने की थी, अतः वह किसी धार्मिक-सांस्कृतिक मतभेद में न फंसकर, इन क्षेत्रों में तटस्थता की नीति अपनाने की घोर समर्थक थी।

'मिशनरी' या प्रचारक, 1813 के चार्टर अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत, भारतीय शिक्षण-व्यवस्था में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ करते हुए पाए जाते हैं। किन्तु 1813 से 1833 के चार्टरों के मध्य की अवधि में, ये विदेशी भाषाओं के माध्यम से, शिक्षा देने वाले प्राथमिक स्तर के विद्यालयों तक सीमित रहे, परन्तु, 1833 एवं 1853 के मध्य उनकी नीति में हमें परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, जब वे आंग्ल माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों एवं महाविद्यालयों पर भी ध्यान केन्द्रित करने लगे। 1830 के बाद के तमाम विद्यालय आदि मिशनरियों अथवा प्रचारकों के थे, न कि, कम्पनी के और, इनका मूल उद्देश्य आंग्ल-शिक्षा के माध्यम से धर्मान्तरण करना ही था। इनका प्रचार-प्रभाव अलग-अलग प्रान्तों, क्षेत्रों में अलग था - सर्वाधिक मद्रास प्रेसिडेन्सी में; तत्पश्चात् बम्बई व बंगाल; उससे कम पश्चिमोत्तर प्रान्त (अब का उत्तर प्रदेश); तदुपरान्त मध्य-भारत एवं सबसे कम पंजाब में।

फिर भी, शिक्षा के साथ, व्यवसायिक -शिक्षा का भी पर्याप्त विस्तार, इस युग में हुआ, जिसमें सर्वप्रथम उल्लेख 1835 ई० में कलकत्ता मेडिकल कालेज का किया जा सकता है।

1844 में बम्बई के एल्फिस्टन इंस्टीट्यूट में इंजीनियरिंग की पढाई शुरू हुई; और, 1847 ई० में रुड़की में टॉमसन के इंजीनियरिंग कालेज का शुभारम्भ हुआ। 1851 में पूना संस्कृत कालेज में 'पूना आंग्ल स्कूल' को सम्बद्ध करके, प्रसिद्ध 'पूना कालेज' का निर्माण किया गया। इसी क्रम में 1854 ई. में बम्बई में 'ग्रान्ट मेडिकल कोलेज' की स्थापना हुई तथा, 1856 ई. में कलकत्ता में इंजीनियरिंग कालेज का शुभारम्भ हुआ।

III

अतः जो आज स्वतंत्रोत्तर भारत में शिक्षा के विकास के नाम पर हो रहा है, वह कितना 'आधुनिक' है और कितना 'पाश्चात्य' इस विवाद में बिना पड़े हुए, हम इतना तो मान ही सकते हैं, कि वस्तुतः वही औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली किसी न किसी रूप में आज भी विद्यमान है। अतः उन्हीं प्रतिमानों के अनुरूप इस शिक्षा-व्यवस्था का परीक्षण एवं मूल्यांकन किया जा सकता है। चूंकि, इन पंक्तियों का लेखक, उच्च शिक्षा से सम्बद्ध है, अतः अपनी बात इसी क्षेत्र से प्रारम्भ करना चाहेगा। उच्चशिक्षा को इस शिक्षा-व्यवस्था रूपी मोमबत्ती की लौ अर्थात् 'शिखर' के रूप में देख सकते हैं; अतः यह स्वयं शिक्षा-प्रणाली की गुणवत्ता का परिचायक एवं प्रमाण होती है। जैसे 'खत का मजमूं भांप लेते हैं, लिफाफा देख के'। इस दृष्टिकोण से तो, इस क्षेत्र में जो दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सकारात्मक एवं उत्साहवर्धक तो नहीं माना जा सकता।

उच्च शिक्षा के उच्च स्तर एवं आदर्श मानकों के अनुरूप बनाये रखने के लिए यू.जी.सी., सी.एस.आई.आर. तथा, ए.आई.सी.टी.ई. आदि संस्थाओं की समय-समय पर जो स्थापना होती रही। इनमें से प्रत्येक संस्था, दूसरों के साथ समन्वय के स्थान पर स्वयं एक स्वतंत्र पृथक संस्था के रूप में कार्य करने लगी, जैसे वह अपने प्रभुत्व दिखाने के लिए ही अस्तित्व में है! इसको एक उदाहरण से सरलता से समझा जा सकता है—चिकित्सा-शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ एक ओर, वह मेडिकल कालेज है, जहाँ शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था होती है, तो, दूसरी ओर, राज्य एवं केन्द्र सरकारें हैं, जिनके अधीन वे कार्य कर रहे हैं, तथा तीसरी ओर 'एम.सी.आई. अथवा 'मेडिकल काउन्सिल ऑफ इण्डिया'। किन्तु तीनों में समन्वय का अभाव नित्य का नियम है। किसके नियम, मानक एवं आदर्श व निर्णय अंतिम होंगे? इससे एक बात स्मरण हो आती है—वह है 'डायनासोर के लोप का एक सिद्धान्त'।

वस्तुतः 'डायनासोर के लोप' का एक सिद्धान्त यह भी है, कि, इतने बड़े जीव में समन्वय का अभाव हो गया; अतः जब इतने बड़े आकार-प्रकार के जन्तु को कोई छोटा सा जन्तु भी हानि पहुँचाने की नीयत से आक्रमण करता तो उसकी प्रतिक्रिया में इतना विलम्ब होता था कि, क्षति हो चुकी होती थी। अर्थात्, जब तक 'संवेदी रसायु' (तंत्रिका) या 'सेन्सेरी नर्व' मस्तिष्क तक किसी भी छोटे जन्तु के आक्रमण आदि की सूचना पहुँचाती और, प्रत्युत्तर में, जब तक मस्तिष्क के निर्णयानुसार 'मोटर नर्व' शरीर को प्रतिक्रिया का संदेश संप्रेषित करती, तब तक जो हानि होनी होती, हो चुकी होती थी; अतः बड़े से आकार-प्रकार वाले 'डायनासोर' अनेकानेक आक्रमणों (अपने शरीर पर होने वाले) के फलस्वरूप लुप्तप्राय हुए। क्या मुझे अब इसमें कुछ और जोड़ने, कहने, लिखने की आवश्यकता है?

फिर भी व्यवस्थापक तंत्र या सरकार को देर सबेर समझ में आता है और वह भी कुछ सुधार, परिवर्तन का प्रयास करता/करती ही है। अतः एक नया विचार-एक नई संस्था के जन्म को साक्षात् करता दिख रहा है। वह संस्था है—'आल इण्डिया कौन्सिल ऑफ हायर एजुकेशन एण्ड रिसर्च, (ए.आई.सी.एच.ई.आर)। आगे किसी 'नॉलेज कौंसिल' की स्थापना की बात होने

लगे। यानी 'ढाक के तीन पात'। हमने औपनिवेशिक काल में देखा था, कि कैसे इस शिक्षा-व्यवस्था का क्रमिक विकास हुआ था। 1921 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुनर्गठन का अधिनियम पारित हुआ था, पश्चिमोत्तर प्रान्त (जो, क्रमशः संयुक्त प्रान्त व अन्ततः उत्तर प्रदेश कहलाया) के लिए पृथक 'माध्यमिक शिक्षा परिषद (बोर्ड)' का गठन किया गया, जो हाईस्कूल एवं इन्टर की परीक्षाओं, अध्ययन/पाठ्यक्रम आदि के लिए उत्तरदायी था। विश्वविद्यालय का सम्बद्धन या एफिलिएटिंग स्वरूप परिवर्तित किया गया— उसे आवासीय, एकात्मक, शिक्षण-संस्था में परिवर्तित किया गया। नागपुर विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ मध्य भारत — बरार आदि के विश्वविद्यालयों का सम्बद्धन उससे हुआ और, आगरा विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही, इलाहाबाद विश्वविद्यालय का एकात्मक स्वरूप पूर्ण हो गया।

जिस समय इसका सम्बद्धन — स्वरूप था, तब इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं उससे पूर्व कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा अपने सम्बद्ध महाविद्यालयों का निरीक्षण — नियंत्रण होता था। यह व्यवस्था, वस्तुतः शिक्षा के स्तर के बनाए रखने के लिए जरूरी ही नहीं, अपरिहार्य है और, इसे समाप्त नहीं किया जाना चाहिए, ताकि, उच्च — शिक्षा का गिरता-स्तर, जो सभी के लिए एक चिंताजनक विषय बना हुआ है, उससे मुक्ति मिल सके। हमारे प्रखर-चिंतक एवं पूर्व राष्ट्रपति डॉ० ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने जो चिंता 'आधारभूत' (basic science) वैज्ञानिक विषयों के विषय में व्यक्त की है, वे सामाजिक — मानविकी विषयों पर भी उतना ही लागू होती है। वही चिंता, इस क्षेत्र में प्रासंगिक है। अतः सिर्फ प्रवेश-परीक्षाओं व परीक्षाओं पर ही बल नहीं दिया जाना चाहिए, अपितु, शिक्षण के स्तर, उसकी विषय-वस्तु, उसकी गुणवत्ता पर भी उतना ही जोर दिया जाना चाहिए। राबर्ट लिण्ड (Robart Lynd) ने जब अपनी कृति "नॉलिज फॉर व्हाट?" (knowledge for what) की रचना की, तब 'मुख्य प्रतिमानों' की स्थापना के साथ, ज्ञान के समस्त आयामों की पूर्णता में प्राप्ति के द्वारा व्यक्तित्व के पूर्ण विकास को ही इस ज्ञान प्राप्ति का उद्देश्य माना।

रॉबर्ट लिण्ड का विचार हमें अपनी नानी-दादी के युग की याद दिलाता है। वे किसी सनद/उपाधि या 'डिग्री' एवं रोजगार-परक शिक्षा प्राप्त नहीं करती थीं, किन्तु जीजाबाई से लेकर, अनेक 'शिक्षित जननियों' के उदाहरणों से इसे समझा सकते हैं। वे जिस दृष्टिकोण से शिक्षित थीं, वह मूल्य-परक थी। अतः वे उत्तरदायित्व-पूर्ण एवं सम्पूर्णता वाले व्यक्तियों को तैयार करने में सक्षम थी। समाजशास्त्री तो स्वीकारते ही हैं, 'मानव के समाजीकरण का प्रथम पाठ मां की गोद ही होती है। अतः इन शिक्षित, मूल्य-प्रतिमानों की संवाहिकाओं ने अपने युग में अपनी भूमिका जीवन्त ढंग से निभाई भी की थी। अतः उच्च-शिक्षा के इन आयामों को भी देखने — समझने की आवश्यकता है।

एक ऐसी शिक्षा-व्यवस्था जो मानव को मानव-समुदाय, समाज, राष्ट्र एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर या विश्व नागरिक के रूप में बेहतर भूमिका निर्वहन करने हेतु तैयार कर सके। ऐसा 'भारतीय' को 'भूमण्डलीकरण' की विकृतियों प्रभावित नहीं कर सकेंगी, जिसके पास सदैव ही, शाश्वत मूल्यों व प्रतिमानों का अवलम्ब होगा। अथवा, जो इन मूल्यों — प्रतिमानों को अपने व्यक्तित्व में समाहित करेगा, वह एक उत्तरदायी मानव, नागरिक और, भारतीय होगा। शिक्षा का उद्देश्य भी यही है और, 'भारत राष्ट्र की प्रत्याशा भी यही है।

आज भी हमारी अपनी नहीं है शिक्षा नीति

राजीव मिश्र

भारतीय शिक्षा के अन्तर्गत बालक की जिज्ञासा शक्ति को उद्दीप्त किया जाता है, साथ ही बालक की सर्जनात्म शक्ति व प्रेम करने की शक्ति को भी शुद्ध, सशक्त व ऊर्ध्वगामी किया जाता है। इससे बालक स्वयं से जुड़ने व विश्व से जुड़ने की क्षमता का अर्जन करता हुआ सर्वात्मभाव के परमलक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा के अनुसार मनुष्य का सम्पूर्ण विकास संभव है। यह शिक्षा मनुष्य की जिज्ञासा शक्ति को उद्दीप्त करती हुई उसे पूर्णानन्द को, पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कराती है। प्रत्येक मनुष्य को उसके स्वभाव, रुचि व क्षमता के अनुसार विकसित होने का मार्ग प्रशस्त करती है। प्राचीन शिक्षा दर्शन के अनुसार व्यक्ति विकसित होता हुआ समाज व संस्कृति को पुष्ट करता है एवं समाज व संस्कृति विश्व संयोजन की ओर अग्रसर होती हुई व्यक्ति को विकसित करती है व उसे अनुकूलता प्रदान करती है। पूर्णज्ञान की प्राप्ति के बाद भी उस जीवयुक्त पुरुष को हर प्रतीति में एक अमित विस्मय, अप्रतिम सौन्दर्य व निरतिषय सुख का अनुभव होता रहता है तथा वह विश्वजीवन के साथ एक होकर जीता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा इन मान्यताओं को लेकर चलती है कि प्रत्येक बालक अनन्त पथ की यात्रा सम्पन्न करके आया है और अमरता का अनुभव कर लेने की संभावना से युक्त है। प्रत्येक बालक में अपने-अपने दिव्य-अदिव्य संस्कार व वासनायें होती हैं, जो शनैः शनैः बीजावस्था से अंकुरित होकर प्रकट होती हैं, जिन्हें युवावस्था में स्पष्टतः पुत्रैषणा, वित्तैषणा, व लोकैषणा के रूप में अनुभव किया जाता है। प्रत्येक मनुष्य पर देव ऋण, भूत ऋण, मनुष्य ऋण, पितृ ऋण व ऋषि ऋण होता है, जिससे उऋण हुए बिना उसे अमरत्व का बोध नहीं हो सकता। इसलिए भारतीय शिक्षा प्रत्येक बालक को धर्म-अर्थ-काम-पुरुषार्थ व मोक्ष के परम पुरुषार्थ का लक्ष्य देती है। इन पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए प्रमेय जगत का ज्ञान आवश्यक है व इसके सम्यक ज्ञान के लिए अन्तःकरण व वहिःकरणों का अर्थात् देह-इन्द्रिय-अन्तःकरण संघात का स्वस्थ, सुदृढ़, सशक्त, सूक्ष्म, तेजस्वी व सुसंस्कृत होना आवश्यक है। देह-इन्द्रिय-अंतःकरण से तादात्म्य रखने वाला ही इस संघात के स्वरूप को सुसंस्कृत करता हुआ त्रिविध पुरुषार्थों को सिद्ध करता है व इनसे ऊपर उठकर आत्मज्ञान अर्थात् मोक्ष की भी प्राप्ति करता है।

शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा पास कर लेना नहीं है। वास्तव में शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। विद्यार्थी की प्रतिभा तथा उसका चतुर्दिक विकास शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

आज की शिक्षा में सही तरीके से जीने के लिए सही समझ विकसित करना लक्ष्य नहीं माना गया है, जबकि यही शिक्षा का लक्ष्य हो सकता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली यूरोप में लगभग 300 साल पहले विकसित हुई और जिन देशों में यूरोप के उपनिवेश स्थापित हुए, वहां स्थानीय परंपरागत शिक्षा व्यवस्था को विस्थापित करके इस शिक्षा प्रणाली को स्थापित किया गया।

ऐसी शिक्षा प्रणाली एक खास सोच से निकले विकास और आधुनिकता को प्रमुखता देती है। इस सोच में माना गया है कि 'विकास' का मात्र एक ही मॉडल होता है, वह सर्वत्र समान रूप से सभी सांस्कृतिक समुदायों के लिए फलदायी होता है। वह जिस प्रकार

आधुनिकता पर आधारित है, वही मनुष्य के लिए कल्याणकारी है और ज्ञान एवं कर्म की जो स्थानीय पारंपरिक मान्यतायें उस समाज की हों, वे पुरातन होने के कारण अविकसित सोच की उपज हैं।

स्वाधीनता संग्राम के हमारे नेताओं ने शिक्षा के संबंध में जो सपना देखा था, वह अब भी सपना ही बना हुआ है। किसी ने उसे जमीन पर उतारने की कोशिश भी नहीं की। बीच-बीच में थोड़ी उम्मीद बनी भी तो वह कुचल दी जाती रही।

महात्मा गांधी की आपत्ति शिक्षा के माध्यम को लेकर ही नहीं थी, वे इस शिक्षा के पीछे की जो मूल दृष्टि थी, उसे भी गलत मानते थे। यह दृष्टि थी कि बच्चा मिट्टी का लोंदा है, जिसे कोई कुम्हार ठोक-पीट कर उपयोगी वस्तु के रूप में गढ़ता है या वह खाली बर्तन है, जिसे ज्ञान नाम के पदार्थ से भरा जाता है। उनकी मान्यता थी कि बच्चे में तमाम शक्तियां अन्तःनिहित हैं और अध्यापक का काम उसकी, भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों को बाहर लाना है।

महात्मा गांधी ने 5 जुलाई 1928 को यंग इण्डिया में लिखा था कि 'यदि मैं तानाशाह होता तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षण बन्द कर देता। सभी अध्यापकों को स्वदेशी में शिक्षा देने के लिए मजबूर कर देता, जो आनाकानी करते उन्हें बर्खास्त कर देता। मैं पाठ्यपुस्तकों तैयार होने का इंतजार नहीं करता।

समाजवादी चिन्तक डॉ० राम मनोहर लोहिया का असंतोष भी सिर्फ शिक्षा के माध्यम से नहीं था, वे शिक्षा की उन बुराइयों से भी क्षुब्ध थे जो अंग्रेजी माध्यम के कारण हममें आ गयी हैं। ये बुराईयां हैं, तोते की तरह तथ्यों को रटना और परीक्षा के समय उगल देना, नकल की प्रवृत्ति, सत्य एवं ज्ञान की खोज के प्रति उदासीनता, मौलिक सोच का अभाव, शिक्षा को आनन्द की वस्तु बनाने के बजाय यातना का स्रोत बनाना, जिज्ञासा का क्षय आदि।

आज अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का पोषण करने वाले स्कूलों की बाढ़ सी आ गयी है और इन स्कूलों के प्रति लोगों का इतना आकर्षण बड़ी ही चिन्ता का विषय है। आज की तथाकथित सभ्यता से सरावोर यह नयी पीढ़ी शिक्षा के नाम पर विलासिता को अपनाकर न केवल स्वयं का अहित कर रही है, अपितु परिवार, समाज एवं राष्ट्र को भी दिग्भ्रमित कर पतन की ओर ले जा रही है। अतः बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

हमारे ऋषियों ने कहा था कि सच्ची शिक्षा वही है, जो विद्यार्थियों को मुक्ति प्रदान करे - 'सा विद्या या विमुक्तये'। परन्तु वर्तमान प्रणाली हमारे बच्चों को अपंग एवं परावलम्बी बना रही है। इसलिए इस व्यवस्था को बुनियाद से बदलना जरूरी है।

स्कूल में भरती होते ही विद्यार्थी बाबू बन जाते हैं। वे फिर हमारे काम के नहीं रहते। वे तो गांव में भी रहना नहीं पसंद करते। शहरों में जाकर नौकरी ढूंढते हैं और दर-दर, मारे-मारे फिरते हैं। यह विश्लेषण गांव में रहने वाले अपढ़ ग्रामीणों का है तथा कितना सही है इसे हम अपने आस-पास दृष्टि दौड़ाकर स्पष्ट देख सकते हैं।

'सा विद्या या विमुक्तये' केवल आध्यात्मिक विचार नहीं है। मुक्ति का अर्थ सिर्फ 'निर्वाण' या 'स्वर्ग प्राप्ति' नहीं है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो इहलोक और परलोक दोनों में हमें बन्धनों से मुक्त कर सके। वर्तमान शिक्षा तो दोनों ही दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। न इस

जीवन में नौजवानों को स्वतंत्र, स्वाश्रयी, स्वाभिमानी बनाती है और न उन आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करती है जो परलोक में कुछ काम आ सके।

जब भारत वर्ष स्वतंत्र हुआ तो भारतीयों को आशा थी कि देश में अपनी शिक्षा नीति होगी और हमारे पुराने ज्ञान पुनर्स्थापित होंगे। परन्तु दुर्भाग्य से अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त, अंग्रेजियत में डूबे हुए हमारे कर्णधारों का अपनी विरासत से लगाव नहीं था, अतः उन्होंने गांधी तथा विनोबा का 'शिक्षा माडल' न अपनाकर 'मैकाले का मॉडल' भारत वर्ष में लागू कर दिया। इस तरह उन्होंने विज्ञानवाद तथा आधुनिकीकरण का भुलावा देकर भारतीय जनमानस की भावनाओं के साथ छल किया, जिसका दुष्परिणाम भारत की आज की पीढ़ी भोग रही है। आज भौतिकवादी प्रतिस्पर्द्धा बढ़ती जा रही है। मूल्यों, संस्कृतियों, संवेदनाओं, संस्कारों का क्षरण तेजी से हो रहा है। व्यक्ति विज्ञान से भले ही चन्द्रमा पर पहुंच जाए, परन्तु जिस तरह मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है उससे यह लगता है कि वह दिन दूर नहीं जब हम अपने को, यंत्र तथा पशुओं की परिभाषा के बीच खोजेंगे।

भारत में अनुसूचित जातियों व जनजातियों की शैक्षिक स्थिति

सुशील कुमार*

शिक्षा, व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की प्रगति के साथ-साथ सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के लिए भी आवश्यक है। 'सुभाषित' में उल्लिखित है कि "ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है, जो उसे समस्त तत्वों के मूल को जानने में सहायता करता है तथा कार्य करने की विधि बताता है"।

महाभारत काव्य में भी वर्णित है कि "विद्या के समान नेत्र तथा सत्य के समान कोई दूसरा तप नहीं है"। कहा गया है कि शिक्षा विनय प्रदान करती है, विनय से पात्रता आती है, पात्रता से धन, धन से धर्म तथा धर्म से सुख प्राप्त होता है।

प्राचीन ग्रन्थों में विद्या का महत्व निम्नांकित श्लोक से स्पष्ट समझा जा सकता है —

**"न चौर हार्यं न राजहार्यं
न भ्रातृ भाज्यं, न च भार कारि
व्यये कृते वर्द्धति एव नित्यं ,
विद्या धनं सर्वधनम् प्रधानम्।"**

प्राचीन भारतीय शिक्षा गुरुकुल पद्धति पर आधारित थी, जिसमें विद्यार्थी गुरु के सानिध्य में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन था। शुद्धता एवं सादगी पर बल दिया जाता था। गीता में वर्णित है कि —

**"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु,
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा"**

इस पद्धति में आचार्य सच्चे जिज्ञासु को ही शिष्य बनाते थे, शिक्षण शुल्क के रूप में कुछ नहीं लिया जाता था, जो व्यक्ति धन की लालसा में शिक्षा देते थे, समाज उन्हें घृणा की नज़र से देखता था। कालिदास ने ऐसे व्यक्ति को 'ज्ञान का व्यवसायी' कहा है। शनैः—शनैः गुरुकुलों का स्थान नालन्दा, विक्रमशिला तथा तक्षशिला जैसे बड़े-बड़े शिक्षा केन्द्रों ने लिया; लेकिन शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञान की गहराई में उतरना ही रहा है। यह व्यवस्था विद्यार्थी के सम्मुख, सादा जीवन उच्च विचार का आदर्श रखती थी।

भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा भी है, जो अभाव एवं दरिद्रता के कारण कष्ट दायक स्थिति में जीवन व्यतीत करता रहा है। हमारे देश में कमजोर एवं वंचित समूहों को संवैधानिक शब्दावली में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति कहा गया है। वास्तव में ये लोग परम्परागत हिन्दू सामाजिक संगठन की रीढ़ कही जाने वाली वर्ण-प्रणाली के तहत शूद्र वर्ण का प्रतिनिधित्व करते हैं। अनुसूचित जातियाँ और जनजातियाँ वस्तुतः अछूत और आदिम समुदायों को अभिव्यक्त करती हैं। इन दोनों श्रेणियों को अनुसूचित इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन जातियों का भारतीय संविधान की अनुसूचियों के अन्तर्गत उल्लेख किया गया है।

* शोध छात्र, विधि संकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग सबसे पहले 'साइमन कमीशन' ने 1927 में किया। अंग्रेजी शासनकाल में अनुसूचित जातियों के लिए सामान्यतया दलित शब्द का प्रयोग किया जाता था। कहीं-कहीं इन्हें बहिष्कृत, अस्पृश्य या बाहरी जातियां भी कहा जाता था। सन् 1932 में 'पूना पैक्ट' हुआ तो उसके अंतर्गत इन अस्पृश्य, दलित तथा शोषित जातियों को पुनः हिन्दू मान लिया गया। महात्मा गांधी ने इनको, विशेष रूप से अस्पृश्य जाति को, हिन्दू समाज में विभिन्न निर्योग्यताओं से मुक्त करने तथा अन्य जातियों की तरह समान विशेषाधिकार के लिए अनेक प्रयास किये। महात्मा गांधी ने इनको 'हरिजन' नाम दिया, जिसका अर्थ है भगवान का जन। अंग्रेजी सरकार के भारत शासन अधिनियम, 1935 (जो अब भारतीय संविधान का अंग है) में इन अछूत जातियों को अनुसूचित जातियां कहा गया है। अंग्रेजी सरकार ने इन अछूत जातियों की एक सूची तैयार करवायी थी, जिसमें 429 जातियों के नाम हैं। तब से ऐसी सूची, जिसमें दलित जातियों के नाम सम्मिलित किए जाते हैं, अनुसूचित जातियां कहलाती हैं।

इन सूचियों को बनाने का लक्ष्य उन जातियों का पता लगाना है जो विभिन्न दृष्टियों से पिछड़ी हैं तथा जिनके विकास के लिए सुनियोजित प्रयास करना तथा संरक्षण प्रदान करना आवश्यक है। इस प्रकार तैयार की गयी सूची में वर्णित नामावली में सभी जातियों को संवैधानिक तथा कानूनी आधार से 'अनुसूचित जातियां व जनजातियां' कहा जाता है।

1. भारतीय संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों व जनजातियों के शैक्षिक हितों का संरक्षण

भारतीय संविधान का अनुभाग 15(4) अनुभाग 15(1) और (2) के सामान्य नियम का अपवाद है। खण्ड (4) संविधान में (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा जोड़ा गया है। यह संशोधन **मद्रास राज्य बनाम चम्पाकम दोराईराजन¹ व जगवन्त कौर बनाम बमर्गई राज्य²** के मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के परिणामस्वरूप जोड़ा गया है। इसमें कहा गया है कि इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगी।

संविधान के 93वें संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के अनुच्छेद 15 के खण्ड (4) के पश्चात् एक नया खण्ड (5) जोड़ा गया है। नया खण्ड (5) यह कहता है कि अनुच्छेद 15 या अनुच्छेद 19(1)(ह) की कोई बात राज्य को शैक्षिक या सामाजिक रूप से पिछड़े किसी वर्ग के नागरिकों को या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की प्रगति के लिए सरकारी सहायता प्राप्त या गैर सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों में, **अनुच्छेद 30(1) में उल्लिखित अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों को छोड़कर**, प्रवेश के सम्बन्ध में विधि द्वारा विशिष्ट उपबन्ध बनाने से राज्य को नहीं रोकेगी।

यहाँ यह उल्लेख आवश्यक है कि

उक्त संशोधन उच्चतम न्यायालय द्वारा **टी.एम. पाई. फाउन्डेशन बनाम कर्नाटक राज्य³ व इस्लामी एकेडमी बनाम कर्नाटक राज्य⁴ तथा पी0ए0 इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य⁵** में दिये

¹ ए0आई0आर0 1952, सुप्रीम कोर्ट 226

² ए0आई0आर0 1952 बम्बई 461

³ ए0आई0आर0 2003 सुप्रीम कोर्ट 355

⁴ ए0आई0आर0 2003 सुप्रीम कोर्ट 3724

⁵ ए0आई0आर0 2005 सुप्रीम कोर्ट 3226

गये निर्णयों के प्रभाव को दूर करने के लिए पारित किया गया है। इन वादों में न्यायालय ने निर्णय दिया था कि राज्य सरकार निजी, गैर सरकारी सहायता प्राप्त, व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं में राज्य प्रवेश के लिए सीटों का आरक्षण नहीं कर सकती है।

प्रवेश सम्बन्धी छूट – भारतीय संविधान का अनुच्छेद 29 (2) के अनुसार सरकार के द्वारा संचालित अथवा सरकारी खजाने से सहायता प्राप्त करने वाली शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश सम्बन्धी प्रतिबन्ध समाप्त हो गये हैं। संविधान का अनुच्छेद 29(2) इस क्रम में उल्लेख करता है कि “राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा, या जन्मस्थान इनमें से किसी एक के आधार वंचित नहीं किया जायेगा।”

शिक्षा का मूल अधिकार अनुच्छेद 21(क)— संविधान के 86वें संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा संविधान में अनुच्छेद 21 के पश्चात् एक नया अनुच्छेद 21(क) जोड़ा गया है, जो यह उपबन्धित करता है कि “राज्य ऐसी रीति से जैसा कि विधि बनाकर निर्धारित करे, 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए उपबन्ध करेगा।

शिक्षा का अधिकार एक मूलभूत मानवाधिकार है। किसी भी लोकतांत्रिक प्रणाली की सफलता वहाँ के सभी नागरिकों के शिक्षित होने पर निर्भर करती है। एक शिक्षित नागरिक स्वयं को विकसित करता है और साथ ही साथ अपने देश को भी विकास की ओर बढ़ाने में योगदान करता है। शिक्षा ही एक व्यक्ति को मानव की गरिमा प्रदान करती है। हमारे देश में यह कहा गया है कि, एक अशिक्षित व्यक्ति पशु के समान है। देश में अनुसूचित जातियों व जनजातियों का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जो आज भी अशिक्षित है। गरीबी, सामाजिक पिछड़ापन, सरकार द्वारा उचित कार्य-योजना एवं उसके क्रियान्वयन के समुचित प्रयास का अभाव आदि इसके मुख्य कारण हैं।

हमारे संविधान निर्माताओं ने सभी बच्चों को शिक्षा देने का कर्तव्य संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के रूप में रखा था –

अनुच्छेद 45— प्रारम्भिक शैशवावस्था की देख-रेख व छः वर्ष से कम आयु के बालकों की शिक्षा का प्रावधान⁶— राज्य प्रारम्भिक शैशवावस्था की देख-रेख और सभी बालकों को उस समय तक, जब तक कि वे छः वर्ष की आयु पूर्ण न कर लें शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 46— अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि⁷— राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा, और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करेगा।

राज्य ने अपने दायित्व के निर्वहन की दृष्टि से ऐसी अनेक योजनाएं लागू की हैं जिनसे अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। ऐसी कुछ योजनाएं निम्नवत हैं:—

⁶ अनुच्छेद 45 भारतीय संविधान

⁷ अनुच्छेद 46 भारतीय संविधान

2. अनुसूचित जातियों व जनजातियों के शैक्षिक विकास की योजनाएं :-

(अ) अस्वच्छ व्यवसाय में लगे व्यक्तियों के बच्चों को छात्रवृत्ति-

अस्वच्छ व्यवसाय में लगे व्यक्तियों जैसे सफाई कर्मचारियों, चमड़ा उतारने एवं शोधन के कार्यों से जुड़े व्यक्तियों के बच्चों को मैट्रिक स्तर तक पढ़ाई के लिए सहायता दी जाती है। लक्षित वर्गों में विकलांग छात्रों को भी सहायता दी जाती है। इस योजना के अन्तर्गत छात्रवृत्ति देने के लिए कोई आय सीमा निर्धारित नहीं है।

(ब) विदेश में छात्रवृत्ति योजना- अनुसूचित जातियों के विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा के लिए राष्ट्रीय समुद्रपारीय छात्रवृत्ति योजना के अन्तर्गत मास्टर स्तरीय पाठ्यक्रमों, पीएच०डी० और उत्तरवर्ती डाक्टोरल अनुसंधान पाठ्यक्रमों तथा इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान के विशिष्ट क्षेत्रों में, विदेश में उच्चतर अध्ययन के लिए चुने गए मेधावी छात्रों को वित्तीय सहायता दी जाती है। इस सहायता में निर्वाह भत्ते का व्यय, यात्रा खर्च, ट्यूशन फीस और अन्य शैक्षिक खर्च शामिल है।

(स) उच्चतर माध्यमिक छात्रवृत्ति योजना- इस योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों के उन छात्रों को वित्तीय सहायता दी जाती है जो मान्यता प्राप्त संस्थानों में उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रमों में अध्ययन करते हैं। इस सहायता में शामिल है: भरण-पोषण भत्ता, संस्थान द्वारा ली गई वापस न होने वाली अनिवार्य फीस की प्रतिपूर्ति, शोध-प्रबन्ध, अध्ययन यात्रा खर्च, पत्राचार पाठ्यक्रमों में पढ़ने वाले छात्रों के लिए पुस्तक भत्ता, आदि।

(द) 12वीं कक्षा के बाद छात्रवृत्तियाँ- चालू शैक्षिक वर्ष से अनुसूचित जातियों और जनजातियों के छात्रों के लिए 12वीं कक्षा के आगे उच्चतर शिक्षा के लिए नयी छात्रवृत्ति योजनाएँ शुरू की गई हैं। अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों के ऐसे छात्र जो अधिसूचित संस्थानों में प्रवेश लेंगे और जिनकी कुल पारिवारिक आय दो लाख रुपये प्रतिवर्ष है, उन्हें ट्यूशन फीस और अन्य अप्रतिदेय प्रभार, आवास खर्च और नवीनतम कम्प्यूटर की लागत को पूरा करने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की जायेगी।

(य) राजीव गांधी राष्ट्रीय अध्येतावृत्ति योजना- राजीव गांधी राष्ट्रीय अध्येतावृत्ति योजना वर्ष 2005-06 से प्रारम्भ की गयी थी। इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों के छात्रों को वित्तीय सहायता के रूप में अध्येतावृत्ति प्रदान करना है ताकि वे एम०फिल० और पीएच०डी० पाठ्यक्रमों में अध्ययन जारी रख सकें। इस योजना के अन्तर्गत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू०जी०सी०) द्वारा मान्यता प्राप्त सभी विश्वविद्यालय/ संस्थान सम्मिलित हैं।

(र) छात्रों की योग्यता उन्नयन योजना- अनुसूचित जातियों/ जनजातियों के छात्रों की योग्यता उन्नयन योजना का मुख्य उद्देश्य आवासीय स्कूलों में शिक्षा के माध्यम से चहुँमुखी विकास के लिए इन जातियों के छात्रों को सुविधाएं उपलब्ध कराकर उनकी योग्यता का उन्नयन करना है। इस योजना में कक्षा 9 से 12 तक की कक्षाओं में पढ़ रहे छात्रों के लिए विशेष कोचिंग की व्यवस्था की गयी है।

(ल) छात्रावास सुविधाएं- अनुसूचित जातियों की लड़कियों के छात्रावास निर्माण की योजना तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान शुरू की गयी थी। अनुसूचित जातियों/ जनजातियों

के लड़कों के लिए छात्रावास निर्माण की एक योजना 1989-90 में शुरू की गयी। महिला छात्रावासों के निर्माण की विशेष स्कीम के अन्तर्गत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग कालेजों/विश्वविद्यालयों और मानद-विश्वविद्यालयों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है, ताकि उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनुसूचित जातियों/जनजातियों की छात्राओं को सुरक्षित माहौल प्रदान किया जा सके तथा शिक्षा के प्रति उनकी जागरूकता को प्रोत्साहित किया जा सके।

(व) राष्ट्रीय साक्षरता मिशन- राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का मुख्य उद्देश्य 15-35 आयु वर्ग के प्रौढ़ निरक्षरों को कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करना है, लेकिन इस कार्यक्रम में अनुसूचित जातियों/जनजातियों, महिलाओं, अल्पसंख्यकों तथा समाज के सुविधाविहीन वर्गों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अनुमानतः साक्षरता कार्यक्रमों से लाभान्वित होने वाले 23 प्रतिशत व्यक्ति अनुसूचित जाति के हैं।

(स) आवासीय विद्यालयों में दलित छात्रों के लिए आरक्षण- जवाहर नवोदय विद्यालय में और कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय दोनों योजनाएं मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन संचालित हैं। नवोदय विद्यालय में दाखिले के लिए अनुसूचित जातियों/जनजातियों के बच्चों के लिए सम्बन्धित जिलों में उनकी जनसंख्या के अनुपात के अनुसार अनुसूचित जाति हेतु 15 प्रतिशत एवं अनुसूचित जनजाति के लिए 7.5 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत से कम न रखते हुए सीटें आरक्षित की जाती हैं। कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यक समुदायों की बालिकाओं हेतु 77 प्रतिशत सीटें आरक्षित रखी जाती हैं।

2.1 सर्व शिक्षा अभियान- 2001 में भारत सरकार द्वारा सर्व शिक्षा अभियान प्रारम्भ किया गया। सर्व शिक्षा अभियान ने प्राथमिक शिक्षा को देश के करोड़ों बच्चों के द्वार तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की है। विगत वर्षों में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर नामांकन दर में सुनिश्चित तौर पर सुधार हुआ है, विद्यालय तक न पहुँच सकने वाले बच्चों की संख्या 2001-02 में 3.2 करोड़ थी, जो 2006-07 में घटकर 0.7 करोड़ रह गयी है। एक अध्ययन से पता चला है कि वर्ष 2005 में 6-12 वर्ष आयु वर्ग के 6.9 प्रतिशत बच्चे अभी भी विद्यालयों से बाहर हैं, जिसमें मुस्लिम बच्चों का अनुपात 9.97 प्रतिशत, अनुसूचित जाति के बच्चों का 8.17 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति के बच्चों का 9.57 प्रतिशत एवं अन्य पिछड़ी जातियों के बच्चों का 6.97 प्रतिशत है। देश के विभिन्न भागों में, जो बच्चे किसी भी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त नहीं कर रहे, उनमें से 23.6 प्रतिशत बिहार में, 22.2 प्रतिशत उ०प्र० में, 9 प्रतिशत पश्चिम बंगाल में तथा 5.9 प्रतिशत राजस्थान में हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में तथा शहरों की मलिन बस्तियों में बड़े पैमाने पर व्याप्त निर्धनता के चलते निर्धन बच्चों में 90 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के बच्चे हैं। इन बच्चों को किसी विद्यालय में प्रवेश दिलाना जितना अधिक कठिन है उससे अधिक उनको विद्यालय में पढ़ाई के लिए रोके रखना है।

इतने प्रयास के बाद भी भारत में अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के बच्चों का विद्यालय छोड़ने का प्रतिशत अभी कम नहीं हुआ है।

भारत में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालय स्तर पर विद्यालय छोड़कर घर बैठने वाले बच्चों का अनुपात (ड्राप आउट रेट) (2007-08) निम्न है:-⁸

	सामान्य जनसंख्या			अनुसूचित जाति जनसंख्या			अनुसूचित जनजाति जनसंख्या		
	I-V	I-VIII	I-X	I-V	I-VIII	I-X	I-V	I-VIII	I-X
बालक	26.2	44.3	56.4	33.7	53.9	67.8	32.0	63.5	75.8
बालिकाएं	24.8	41.4	57.3	29.5	51.0	68.6	32.4	63.1	77.4
कुल	25.5	43.0	56.8	31.9	52.6	68.1	32.2	63.4	76.5

3. शिक्षा अब मौलिक अधिकार :-

‘विश्व में सर्वाधिक निरक्षर भारत में रहते हैं’। इस अभिशाप से देश को मुक्ति दिलाने के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा पाने का अधिकार अन्ततः 1 अप्रैल 2010 को एक वास्तविकता बन गया। शिक्षा पाने के अधिकार से समावेशी विकास के लक्ष्य को पाने में सुनिश्चित तौर पर सहायता मिलेगी। सन् 2002 में संविधान में 86वें संशोधन द्वारा शिक्षा पाने के अधिकार को मौलिक अधिकारों में शामिल करने के लिए अनुच्छेद 21(क) जोड़ा गया। इसे विधिकता प्रदान करने के लिए सन् 2009 में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा पाने का अधिकार अधिनियम 2009 पारित किया गया, जिसे 1 अप्रैल 2010 को लागू किया गया। इस प्रकार अब भारत में 6-14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चे विधिक तौर पर निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा पाने के हकदार हैं।

4. क्रियान्वयन सम्बन्धी कतिपय बाधाएँ- इन प्रावधानों के क्रियान्वयन सम्बन्धी अनेक बाधाएँ हैं, जिन्हें राजनीतिक इच्छा शक्ति के द्वारा ही पार किया जा सकेगा। विख्यात शिक्षाविद् विनोद रैना के अनुसार एक अन्य प्रमुख चुनौती ऐतिहासिक रूप से भेदभाव के शिकार वर्गों-दलितों, आदिवासियों एवं अल्पसंख्यकों (विशेष रूप से मुसलमानों) तक इन अधिकार को पहुँचाने की है।

संवैधानिक तौर पर शिक्षा संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची का विषय है, लेकिन क्रियान्वयन हेतु यह राज्यों के अधिकार क्षेत्र में आता है। इस कानून को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने के लिए जब तक राज्य सरकारें प्रत्येक 1 कि.मी. की दूरी पर विद्यालय की स्थापना नहीं करती तथा इन विद्यालयों में प्रत्येक 25 छात्र-छात्राओं पर एक शिक्षक की नियुक्ति नहीं करती, तब तक शिक्षा पाने का अधिकार कानून की पुस्तकों तक ही सीमित होकर रह जायेगा।

देश के 20 करोड़ से अधिक बच्चों तक गुणात्मक शिक्षा पहुँचाने का लक्ष्य सुनिश्चित तौर पर बहुत दूर-सा प्रतीत होता है, विशेष तौर पर विगत छह दशकों के दौरान शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त बदहाली को देखते हुए। निर्धनों एवं वंचितों के धैर्य की भी सीमा है। स्वतंत्रता के

⁸ स्रोत: मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की वर्ष 2009-10 की वार्षिक रिपोर्ट-

विगत 60 वर्षों में निर्धन एवं वंचित समाज को जो प्राप्त होना चाहिए था वह नहीं प्राप्त हो सका है। इसके लिए सम्पूर्ण व्यवस्था में आत्मचिंतन की आवश्यकता है।

5. उपसंहार

आज भारत में शिक्षा प्राप्त करना हर व्यक्ति का अधिकार है; साथ ही राज्य का दायित्व भी है। शिक्षा को आज न सिर्फ वैयक्तिक विकास हेतु बल्कि राष्ट्रीय विकास के लिए भी अपरिहार्य माना जा रहा है। समाज या राष्ट्र का कल्याण किसी वर्ग या जाति विशेष के शिक्षित होने से नहीं अपितु सभी भारतीयों के शिक्षित होने से ही सम्भव है। भारतीय संविधान में समाज के उस वर्ग के लिए विशेष सुविधायें दिये जाने की बात की गयी है जो ऐतिहासिक या सामाजिक कारणों से दलित, शोषित या उपेक्षित है और शिक्षा के इस धन से वंचित है।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के छात्र संविधान की इस उदात्त भावना के आलोक में सरकार द्वारा निर्मित अन्यान्य विधियों एवं तत्राधीन योजनाओं का लाभ प्राप्त कर भारतीय समाज की मुख्यधारा में अपनी भूमिका निभाने हेतु क्रमशः तैयार हो रहे हैं। यह शुभ संकेत है, क्योंकि भारत की सबलता इसी में है कि मां भारती की हर संतान ज्ञान एवं विद्या के धन एवं बल से समन्वित है।

शिक्षा का अधिकार – संवैधानिक पहलू

शैलेन्द्र कुमार अवस्थी*

15 अगस्त 1947 को जब आजादी प्राप्त हुई, उसके पूर्व से ही संविधान सभा संविधान बनाने के कार्य में प्रयत्नशील थी। 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू हुआ। संविधान की उद्देशिका में यह कहा गया है कि 'हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए एवं इसके समस्त नागरिकों को सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय सुनिश्चित करने वाली व्यवस्था बनाने के लिए कृत संकल्प होकर संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।' इस संविधान के रचनाकार हम भारतीय ही तो थे। आर्थिक तथा राजनैतिक सम्प्रभुता का अर्थ था कि हम भारतीय लोग कैसा विकास चाहते हैं, यह हम भारत के लोगों को ही तय करना था। यह एक स्वाभाविक अभिप्सा थी, कि विकास ऐसा होना चाहिए जिससे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय मिले।

संविधान केवल कानूनी किताब नहीं है बल्कि राज्य एवं राजनीति के चरित्र को निर्धारित करने वाला यह राष्ट्रीय मौलिक दस्तावेज है। समाजवाद तथा समतामूलक मानव विकास की अवधारणा संविधान में विहित है।

भारतीय संविधान के खंड तीन एवं चार में शिक्षा सम्बन्धी कई प्रावधान दिए गये हैं। यहां पर यह इंगित करना उचित होगा कि इन प्रावधानों में प्रयुक्त राज्य शब्द के अधीन, जब तक अन्यथा इंगित न हो, भारत सरकार एवं संसद और राज्यों की सरकार एवं विधानमंडल एवं सभी स्थानीय एवं अन्य संस्थायें शामिल हैं। प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता, अल्पसंख्यकों की शिक्षा, शिक्षा अधिकारों में समरूपता, अनुसूचित जाति तथा जनजाति से सम्बन्धित बालकों की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा की स्वतंत्रता, शिक्षा का माध्यम हिन्दी का विकास इत्यादि के बारे में विशेषतया प्रावधानित किया गया है।

संविधान संशोधन अधिनियम 2002 के द्वारा अनुच्छेद 21-क जोड़ा गया जिसके अनुसार प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करना नागरिकों का मौलिक अधिकार माना गया; फिर भी संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत शिक्षा के अधिकार को विवक्षित माना जा सकता है।

शिक्षा का अधिकार प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार से क्रियता प्राप्त करता है। अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी व्यक्ति को उसके प्राण अथवा दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के द्वारा ही वंचित किया जा सकता है। शिक्षा का अधिकार के इसके अधीन 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराना सरकार की प्राथमिकता

* एडवोकेट, 133/93-एफ, एल0 आई0 सी0 कालोनी, टैगोर टाउन, इलाहाबाद

है। इसके अनुसार हमारे देश की संसद द्वारा बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 1 अप्रैल 2009 को लागू किया गया। इसके पश्चात् कागजी रूप से ही सही पर भारत ऐसे 130 से अधिक देशों की श्रेणी में शामिल हो गया जो अपने देश के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए विधि द्वारा आबद्ध हैं।

6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक, बालिकायें, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों के बच्चे एवं गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के बच्चे तथा विकलांग बच्चे आदि सभी को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार हमारे देश की विधि द्वारा प्रदान किया गया है।

अनुच्छेद 21 कहता है— (प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण)— किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

अनुच्छेद 21 क कहता है— (शिक्षा का अधिकार)— राज्य 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा जैसा कि राज्य उचित रीति से विधि द्वारा अवधारित करे।

भारतीय संविधान में सर्वधर्म सम्मत शिक्षा की व्यवस्था है। संविधान के अनुच्छेद 28 में प्रावधानित है कि राज्य सरकार द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। यह प्रावधान भी है कि सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अथवा सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्था में चलाई जा रही धार्मिक पूजा में भाग लेने हेतु किसी भी व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जा सकता। शिक्षा संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा या संस्था में किए जा रहे धार्मिक क्रियाकलापों में अपनी इच्छा से भाग लिया जा सकता है।

अनुच्छेद 28 — कुछ शैक्षिक संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने की में स्वतंत्रता के बारे में बताता है— (1) राज्य—निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।

(2) खण्ड (1) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था पर लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन राज्य करता है किन्तु जो किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुई है जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है।

(3) राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य—निधि से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए या ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति ने, या यदि वह अवयस्क है तो उसके संरक्षक ने, इसके लिए अपनी सहमति नहीं दे दी हो।

प्रजातंत्र में जाति, धर्म एवं स्तर की परवाह किए बगैर ही सबको अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने के लिए समान अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। प्रजातंत्र की इस मूलभूत मान्यता को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 29 में सभी के शैक्षिक अधिकारों को सुनिश्चित किया गया है। अनुच्छेद 29(2) में यह कहा गया है कि राज्य सरकार द्वारा संचालित अथवा सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्था में किसी भी व्यक्ति को धर्म, जाति, वर्ण अथवा भाषा के आधार पर प्रवेश हेतु मना नहीं किया जा सकता है।

अनिवार्य तथा निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का विचार प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था की देन है। प्रजातन्त्र को सफलतापूर्वक व प्रभावशाली ढंग से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि सभी नागरिक एक न्यूनतम स्तर तक की शिक्षा अवश्य प्राप्त करें, जिससे वे राजनैतिक प्रकरणों पर प्रबुद्ध नागरिक के रूप में विचार कर सकें। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का नारा सबसे पहले उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में पश्चिमी देशों में दिया गया था। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, विदेशी शासन के कारण यह कार्य भारत में काफी समय तक नहीं हो पाया। यद्यपि कुछ भारतीय व विदेशी शिक्षाविदों ने इस दिशा में यत्न-तत्र प्रयास किये, परन्तु उन्हें इसमें सफलता नहीं मिल सकी। सन् 1882 में दादा भाई नौरोजी ने भारतीय शिक्षा आयोग (हंटर आयोग) के सामने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य व निःशुल्क बनाने की मांग रखी थी। यद्यपि उनकी इस मांग को स्वीकार नहीं किया गया, परन्तु इस मांग ने भारतीयों के लिए अनिवार्य व निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता की तरफ सभी का ध्यान आकर्षित किया।

सन् 1950 में संविधान के लागू होने के समय संविधान के अनुच्छेद 45 में निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का दायित्व राज्य सरकार को सौंपा गया। इस अनुच्छेद में कहा गया कि संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर राज्य अपने क्षेत्र के सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु होने तक निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। परन्तु सन् 2002 में हुए 96वें संशोधन के द्वारा इसे शैशवपूर्व देखभाल व शिक्षा तक सीमित कर दिया गया है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 के अनुसार राज्य सभी बच्चों को छः वर्ष की आयु पूरी करने तक शैशवपूर्व देखभाल व शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयास करेगा।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यक—वर्गों के शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने के अधिकार के बारे में बताता है (1) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक—वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

(2) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है।

भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों की शैक्षिक तथा सांस्कृतिक उन्नति के लिए विशेष व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद 30 (1 व 2) के अनुसार धर्म या भाषा के आधार पर अल्पसंख्यक समुदाय अपनी पसन्द की शिक्षा संस्थाएं स्थापित तथा प्रशासित कर सकते हैं। राज्य सरकारें अनुदान देते समय इन संस्थाओं से केवल इसलिए भेदभाव नहीं करेंगी कि ये संस्थाएं अल्पसंख्यकों के द्वारा विशेष नियमों के अन्तर्गत चलाई जा रही हैं। इस प्रकार संविधान अल्पसंख्यकों के शैक्षिक हितों की रक्षा करता है।

संविधान का अनुच्छेद 46 अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों की शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि के बारे में बताता है। राज्य जनता के दुर्बल वर्गों की, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय व सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।

संविधान में समाज के सभी कमजोर वर्गों की शैक्षिक उन्नति के प्रोत्साहन का उत्तरदायित्व राज्य का है। संविधान के अनुच्छेद 46 के अन्तर्गत कहा गया है कि राज्य कमजोर वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जाति व जनजाति की शैक्षिक तथा आर्थिक उन्नति को विशेष रूप से प्रोत्साहित करेगा तथा उनको सामाजिक अन्याय व धोखे से बचायेगा। इस प्रकार संविधान में समाज के सभी वर्गों की शिक्षा व उन्नति के अवसर सुनिश्चित किये गये हैं।

प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के महत्व को स्वीकार करते हुए संविधान के अनुच्छेद 350 क में कहा गया है कि भाषायी दृष्टि से अल्पसंख्यक समूहों के बालकों को उनकी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा सुविधाएं उपलब्ध कराने का दायित्व राज्य तथा स्थानीय निकाय (Local authority) का है। इस प्रकार से भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए उनकी भाषा में प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना राज्य का कार्य है।

संविधान का अनुच्छेद 350 प्राथमिक स्तर पर मातृ-भाषा में शिक्षा की सुविधाओं के बारे में बताता है। प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबन्ध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

यद्यपि भारतीय संविधान में स्त्री व पिछड़े वर्ग की शिक्षा के लिए कोई विशेष प्रावधान नहीं दिये गये हैं, परन्तु अनुच्छेद 15(3 व 4) में महिलाओं तथा सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान बनाने पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है। स्पष्ट है कि महिलाओं तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा के लिए राज्य विशेष व्यवस्था करने के लिए संविधान की दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्र है।

संविधान का अनुच्छेद 351 हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देशित करता है। संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार करे, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार राष्ट्रीय भाषा हिन्दी के प्रसार, संवर्धन तथा इसे ऐसे ढंग से विकसित करने का विशेष दायित्व केन्द्र का है कि यह भारत की मिलीजुली संस्कृति के सभी वर्गों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।

उपसंहार

भारतीय संविधान भाषा एवं शिक्षा के प्रश्न पर काफी सजग एवं संवेदनशील है। इसमें न सिर्फ प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करते हुए मौलिक अधिकार के रूप में महिमा मण्डित किया गया है; बल्कि नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत शिशुओं के स्वास्थ्य आदि के संरक्षण एवं परिवर्द्धन का दायित्व भी राज्य को दिया गया है।

इसके अतिरिक्त भाषाई अल्पसंख्यकों को यह अधिकार दिया गया है कि वे अपनी भाषा कि लिपि एवं संस्कृति के रक्षार्थ शिक्षण संस्थाओं आदि का संचालन कर सकते हैं। वर्तमान शिक्षा के हर स्तर पर समाज के पिछड़े वर्गों एवं अनुसूचित जाति तथा जनजाति के छात्रों हेतु विशेष व्यवस्थाएं की गयी हैं। ताकि शिक्षा को सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय का एक अस्त्र बनाया जा सके।

अन्त में संविधान क्षेत्रीय एवं सम्पर्क भाषाओं के महत्व को स्वीकार करते हुए भी हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्थापित करने हेतु संकल्पित है।

What Ails Indian Education and What Fails Indian Economy

Dr Kunal Ghosh*

[The prehistoric man, through evolution, acquired a dexterous pair of hands and to control them an intelligent brain. It is this combination that gave birth to the human civilization and history.]

Swami Vivekananda said, “Education is the manifestation of divinity already in man”. He was talking of the whole man who has many dimensions, spiritual, moral, social, cultural, economic and many more. My purpose here is to talk of mainly of the economic man whose society and culture influence his actions. What kind of education prepares him adequately for the economic tasks? By “economic tasks” I mean those that are required to be performed in the globalised market place for the sake of conventional success. These can be divided in two categories. In Category-1 are innovation, invention, research, development and design of quality goods and processes. India is woefully lacking in these areas where engineering plays a direct and important role. There are other ingredients of economic success such as trading instinct, sales, marketing and management skills which are in Category-2. Indian industrialists possess these in good measure. Yet on the whole they are not very successful. I like to start by looking into what fails our economy and make a point by citing an example.

THE CAR AS AN EXAMPLE

India started producing cars in the early 1950s. The first car was a copy of the Morris Minor and renamed Hindustan. The design to the last nut and bolt was provided by the Morris Company of UK and the production line was set up by Hind Motors, of the Birlas, near Kolkata. The first Hindustan car rolled out in 1954, if my memory is right. Two or three years later appeared the Ambassador, a copy of Morris Oxford. There were other Indian companies who went into collaboration with other foreign car majors. Not even one Indian company went in for an indigenous design and export.

In the early 1960s, when I was an engineering undergraduate, South Korea had just had a military coup and Park Chung Hee foisted himself as the president (1961). This ended an eight year interregnum of great political instability which had followed the armistice of 1953 that had brought the Korean war to an end. The country was devastated by continuous wars and foreign occupation since the early 1930s. It depended mainly on subsistence agriculture and had little industry. It had reached the

* Professor Aerospace Engineering Department, I.I.T. Kanpur , (Published in *Mainstream*, New Delhi. May 4, 2002, p. 19 -23.)

nadir of underdevelopment. In the late 1960s, when I was a post graduate student in England, the European market began to be flooded by cheap but quality textile goods and toys made in S. Korea. The 1960s and 1970s were the period of capital accumulation. In 1978 the South Koreans launched their car industry, with great emphasis on indigenous research, design and development, on a course completely different from India's. They persisted in their approach till the early 1990s when the car industry came of age and started producing world-beaters.

Thus India had a lead of nearly 30 years over S. Korea but she too persisted doggedly with her own chosen course of borrowing technology on unequal terms. Our political leaders talked of self-reliance but the captains of our private industry were doing just the opposite. We started by borrowing technology from old developed countries of Europe and now we are borrowing from newly developed countries of Asia such as S. Korea, Singapore and Taiwan. The car is only one example. More or less the same history repeats in almost all spheres of engineering and consumer goods such as refrigerators, music system, two-wheelers, medical equipment etc. The leaders of our private industry had not the same vision as the South Koreans, Taiwanese and now the main land Chinese. The last has started to flood the world market with small-sized quality consumer goods and toys since 2000. In 2001 China's exports were more than ten times India's. China's were mostly hardware against India's predominantly tea, Basmati rice, leather and software.

MODERATE SUCCESS

There is one area where Indian private industry has done quite well. This is the area of software research and development, which is about one half of information technology. The other half has to do with computer and communication hardware. India has a growing share of the world software market. But unfortunately for India, world economy revolves primarily around hardware production and not software. It should be noted that the share of hardware products (such as common consumer durables like the car and refrigerator, medical and defense equipment, machinery and machine tools, airplanes, ships, computer hardware etc) in the global industrial production is 90% or even more. Software products are only a small fraction and will always remain so. Since year 2000 the global demand for software products has gradually leveled off.

India has also had moderate success in the R & D (Research & Development) of engineering hardware needed by our armed forces. This kind of research has been carried out in Indian Space Research Organisation, Defence laboratories and Council of Industrial and Scientific Research laboratories, all public sector institutions. Even here the record is a mixed one. The main indigenous battle tank, Arjun, is more than a decade behind schedule; we are mainly dependent on the tanks of Russian make. We have no capability of producing a big gun like the Bofors, although it has been with us for 15 years or so. All in all, the public sector's record in engineering R & D is much

better than the private sector's. I hasten to add that R & D in agriculture, drugs and other non-engineering sectors has a much better record. Since the strength of a modern economy depends much on hardware engineering and manufacturing, aforementioned successes are no more than a silver lining to the dark clouds.

WHAT AILS EDUCATION

After outlining what fails our economy, I assert that this failure is not only due to lack of vision of the leaders of our private industry; there is a much deeper malaise which permeates our educational system at schools and colleges, and upbringing at home. Barring a few exceptions our engineers are generally not capable of invention, innovation and design in the sphere of hardware. However they are more than capable in the realm of software. Why so is the basic question.

The Pioneer

Let us first examine what makes a pioneer engineer or an inventor tick? What are his special personality traits, family background and social milieu? The inventor of the first voice recorder, electric bulb, the first automatic telegraphic transmission and many other devices is Thomas Alva Edison. His father was a grain dealer and mother was a school teacher before marriage a very rare distinction for a woman in the first half of the 19th century. Once a teacher in school dared to remark that young Edison was "addle-brained" and his mother took offence. She withdrew him from school and taught him herself. Schooling was not compulsory and literacy was far from universal in small town America in that period. At the age of eleven Edison grew vegetables in his mother's kitchen garden and sold them. With his earnings he bought books on Chemistry and equipment for chemical experiments. He taught himself how to operate a printing press and at the age of fifteen he became owner, reporter, editor, printer, publisher and news-vendor of a local newspaper. Later when he became wealthy and famous, he continued to work in his laboratory alongside hired assistants, till a short while before death at the age of eighty four. When gripped by an idea he often stayed in the lab for four or five days at a stretch, sleeping a few hours on a work table. Such was his physical fitness and endurance.

The Wright brothers, who are credited with building the first successful airplane, were born to a Protestant priest father and a mathematics graduate mother. A woman with a university degree was extremely rare in the second half of the 19th century in America. Their father had some mechanical talent and invented an early form of the typewriter. The brothers benefited greatly from the intellectual atmosphere of the family. They did not receive the high school diploma but were well read on engineering and research papers by previous aviators. Their favourite author was a German called Otto Lilienthal, the maker of the first successful hang glider who died in a flying accident. They opened a cycle repair shop where they themselves worked as repair mechanics and yet enjoyed good status in society. (By contrast, a cycle or even a car repairer in an Indian town is likely to be a semi-literate, having a

low status in society. No respectable Indian gentleman would like his son to be a car repair mechanic.) Later they went into cycle manufacture and printing business. They put the money thus earned into making a flying machine, their hobby-horse. They were the sole designers, builders and fliers of this untried unproven machine and had many close calls with death. When one was the pilot the other ran alongside holding up one wing-tip of the plane during the take-off run, till the plane picked up enough speed. Both had superb physical fitness and were good sprinters.

What we observe is that a typical pioneer engineer is born to educated parents. He loves to perform experiments and tinker with machines and mechanisms from his early boyhood. He is well educated, not necessarily formally. His parents encourage intellectual pursuits. Most important, his society values skilled manual work very highly. He grows up as a thinking, hard working man with a dexterous pair of hands and a lot of imagination. He shows great physical endurance. Above all he has an attitude of mind that propels him to do even menial work such as growing vegetables or running with a plane about to take off, holding up its wing.

Schooling and Upbringing

Now let us take a good look at the social background of a typical Indian engineer and what kind of schooling he receives. He is usually born to upper caste upper class parents. The father typically does no manual work and possesses no manual skill. All repairs at home are done by *bazzar* mechanics on call. The boy, unlike his Euro-American, Japanese or Korean counterpart, does not and cannot repair simple faults in his bicycle. Manual work, both skilled and unskilled, is looked down upon in his family and *beradari*. Unfortunately, those who do skilled manual work, the craftsmen from certain castes, usually do not possess wealth and education. In the rare cases when they acquire wealth and education, they imbibe the values and attitudes of the upper castes and give up manual work. In other words in our society a skilled pair of hands is rarely combined with an educated intellectually creative mind.

At school a boy, say a future engineer, is taught too early and too much of bookish theory without any recourse to practice. Violating all established principles of kindergarten and primary education he is exposed to exams and failures at an early age. His mathematical skills are honed by teachers at school, and parents and private tutors at home. The syllabus is heavy and he has little time left for play, leave alone tinkering with mechanical objects. At higher levels in school a future engineer takes the science stream. Here the syllabus is so heavy that his sleeping hours are reduced. He prepares for the competitive entrance tests for the engineering colleges and these tests are all theoretical written tests, designed to assess his mathematical and analytical ability, and not his practical aptitude. So he neglects the practical side of science education and sticks to the minimum for passing the school exams. The teachers at school understand his predicament and wink at the stipulated lab and

practical project work requirement. The pupil leaves school with an attitude of mind not at all conducive for skilled or unskilled manual work.

To get a measure of how heavy is the science syllabus in our schools, I procured and compared the syllabus of A-levels of England with the CBSE (Central Board of Secondary Education) syllabus of Class 12. The pupils of the two countries take these at the same age of eighteen. (Our Class 10 corresponds to their O-level or Ordinary Level, which are taken at the age of sixteen.) A-level stands for Advanced Level. Within A-level there is a division, namely General level and Extra-advanced level. The Physics syllabus of English A-level is given below:

1] General physics, Circular motion, Oscillation, work and energy, Molecular kinetics, heating and working, Capacitance, Concept of exponential decay, Momentum concept, Quantum phenomena.

2] Fields and their application: Electric, magnetic and gravitational fields, Nuclear energy, Particle accelerators and detectors.

3] Foundation physics : Scalars and vectors, Kinetics, Energy concepts, Current electricity, DC circuits, Information and communication.

4] Waves and nuclear physics: Waves, Diffraction, Interference, Spectra, Radioactivity, Particle physics.

5] Experimental work.

Topics 1 & 2 are for General level and 3, 4 & 5 are for Extra-advanced level.

It is apparent that their extra-advanced level is about the same as our Class 12. This is true for Chemistry and Mathematics as well. I am not listing their syllabi here although I have them. An English pupil chooses to take the extra-advanced level in only one subject and combines it with three other subjects at General level, whereas an Indian pupil has to cope with all four, Physics Chemistry Mathematics and Biology, at the extra-advanced level. The syllabus in our schools is too heavy in my opinion. It hampers (1) extra-curricular activity and (2) the growth of practical aptitude in our school-going children. Both are important for a future innovator or inventor.

The education in our engineering colleges does not compensate for these deficiencies. The student finds that most of his masters, his role models, are engaged in theoretical and software research. In British engineering institutions a majority of the teachers are engaged in experimental research, I speak from first hand knowledge. In our engineering colleges there is a minority who try gamely to do hardware research and experiments. But they usually do not get very far due to poor infrastructure and lack of motivation of the supporting staff in our government funded institutions. On the other hand, the mathematical skills honed in the schools and further reinforced in the context of engineering education prepare the student well for software research and development. It is no wonder that Indian software industry is

doing so well. But I state once again that the backbone of a modern economy is hardware engineering and not software.

Comparison with the Medical Profession

Our medical men, although drawn from the same sort of caste-class background, show a much better practical aptitude. The long hands-on training they receive in the medical college makes up for the lacunae in schooling and upbringing. A successful surgeon has a high degree of manual skill; at the same time in the matter of theoretical knowledge he is no less than his engineering counterpart. The skill displayed by an orthopaedic surgeon in aligning broken bones and joining them by means of metal plates and screws surpasses that of a skilled mechanical technician. The surgeon has to complete his job at great speed within limited time in the middle of pulsating flesh and blood, whereas the mechanical technician works comfortably at his bench and faces no such constraints. It is no surprise that Indian surgeons often innovate on accepted procedures or develop new ones. Indian engineers rarely do so. (That is why patent applications in this country are few and patent offices are idling.) The surgeon can innovate because he is intimately familiar with the object of his innovation. This familiarity is acquired as much by a skilled pair of hands as by an educated brain. Consider someone who has a theoretical knowledge of surgery but does not perform operations. He can neither device a new procedure nor improve a given instrument.

REMEDY

If our economy is to be competitive globally, our private industrialists and financiers must develop a new vision. They must invest in R & D and not look for quick returns. Returns would certainly come but after a long gestation period, and then it would come in abundance. However, a more fundamental change in our schooling and upbringing is necessary. Theoretical content in our school curriculum should be reduced and suitable manual work introduced at an early age. For instance, sweeping and cleaning of school premises including toilets should be done by all pupils and teachers together, irrespective of caste and creed. In Japanese schools this is the practice. At the age of ten they should be taught gardening with small implements and making earthenware objects by shaping mud without the use of a tool. When they reach the teens carpentry and the potter's wheel should be introduced. At a more advanced age all should learn how to do simple repairs on a bicycle. Everyday the pupils should do at least an hour's work, based on traditional arts and crafts. This would be the cheapest and easiest way of imparting hands-on dexterity and the right mindset to our youth. This would also rid them of the caste complexes of superiority and inferiority, inherent in our society. Laboratory and project works are already part of the science curricula; they must now be given as much priority as theory. To make room for manual and laboratory works, theoretical part of the syllabus should be curtailed at all levels. The aim is to give every citizen a

combination of an educated brain and a dexterous pair of hands limited, of course, by his/her inherent capacity, and an attitude of mind that enables him to do skilled manual work. Then we can hope to produce engineers who can invent and technicians who can innovate.

In the engineering colleges the students should be required to do practical hardware projects, in all four years, with minimal assistance from professional mechanics. Presently they do such a project only in the penultimate year in most colleges. To make room for such work theoretical portion of the curriculum should be reduced. The faculty in the engineering colleges should be encouraged to work on innovations of hardware products and processes. This would not happen unless research, based solely on computation, is discouraged. All this requires change in the attitude and the greatest hurdle would be educating the educators.

Our educators must heed that compelling school children to internalize (some say “cram”) an enormous amount of theoretical study material is causing “burn-outs” at an early age. One hears more and more of depression and suicides among young children. If this type of “pressure-cooker” education were to help our economy to develop, one could make an argument, no matter how tenuous, in its favour. But it is actually hurting the economy too. Therefore it is time to change direction.

Education at a Loss of Values

Is the teacher responsible?

Dr JP Mishra*

Synopsis

This paper is divided in to seven parts barring the initial and final ones in the form of introduction and conclusion/suggestions respectively. The first part is about values and value education, the second has a look on the impact of modern living on values, the third glances over the role of teacher and expectations of society vis-à-vis value education, the fourth focuses on increasing loss of values in our times, and the fifth confronts the central question: “Is the teacher responsible?” The sixth part hints at some other clues as regards answer to the said question. The seventh part concentrates on a few efforts aimed at inculcating values in students.

Introduction

Now a days so much crime is there we do not feel disturbed by howsoever heinous crime we hear of, there is so much of corruption we are never taken a back by even the worst cases of corruption coming to light, and there is so much of distrust, hatred and contempt brewing over we seldom are taken by surprise having heard of incidents which otherwise would have been deplorable by all means at one’s command.

You may be an exception and can pat your back but exceptions do not make rules, they rather unmake it. Furthermore the society is known by its norms and not by exceptions, because the general trend of social thought and actions has its reflections in the former rather than the latter. And, if such reflections are taken in to account it is clear beyond doubt that the state of affairs is far from satisfactory.

Recently the Bombay Police unearthed a racket that involved several government officials conniving in supplying inferior quality condoms used for free distribution as a part of family planning awareness campaign. In our own state, it has come to light that the food grains supplied at subsidized rate by the government to be distributed to those below poverty line never reached them, not to say of fraud and corruption prevailing in mid day meals plan. Last year a student from Ballia claimed he had topped in a quiz competition at Oxford that was fake. And, a professor from Bihar openly admitted having fallen in love with one of his students, and stuck to his guns even after he lost his job. Another professor’s face was painted black in Delhi by students for his alleged indecent manoeuvrings regarding some girls. Most recently a plastic surgery specialist was found making unwelcome advances towards one of his patients. One man from a village in UP is facing charges of sexual abuse and murder of several children in his backyard while almost similar charges are being faced by a

* Reader, Faculty of Law, University of Allahabad, Allahabad (India).

man from Gujarat who had raped and murdered dozens of minor girls. To cap it all, the kidney racket-wherein hundreds of hapless persons were forced to sell their kidneys that were transplanted to customers for heavy prices- has shocked one and all.

Examples abound. Some of us are emotional for a few seconds and some for a few days, while the so called literate lot tries to explain it away by terming these as stray cases of perversion, corruption etc and gets busy with some other topic of its choice.

But this certainly is not the case. We need look at the meaning that runs deeper in these news items. If we lose time it may be only a matter of years, if not days, when such issues will address us more urgently and, God may forbid, even personally. Therefore it is better to ponder over it.

At the crux, let me say, lies the materialistic culture and evils attending it. Everywhere our actions are marked by a cut-throat competition, and are devoid of any values except material ones. This crisis of values presents itself in almost all walks of life through out the nation. We just can not wish away this unpleasant trend by either terming it as a part of modern way of life or a national version of a global trend. With as rich a culture as ours we, unlike some other countries in the world, can not but try to find a way out of this markedly degrading situation. If great values can make a great nation, the loss of such values may also spell doom for the progress of any nation.

In the following sections an attempt has been made to see the role of a teacher in such a trying moment because he of all is the one the society pins its hopes at.

Part I: Value Education

Values are the guiding elements of human conduct in the journey of the human race towards fulfilment. On the other hand values may also be looked upon as the ideals a society would like to achieve.¹

Indian thinkers suggested four values that give meaning to one's life: religious/moral (*dharma*), sexual/entertainment (*kama*), economic (*artha*) and spiritual (*moksha*) commonly known as *purushartha chatushtaya*. They classified all men in to four categories called *varnas*. Likewise, they suggested four *ashramas* of which the first, that is, *bahmacharya* was meant to be devoted to education-regarded as a sanskar- at a gurukul. The teacher in his convocation address would ask the pupils: मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकम् सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयसो

¹ The word value is the past participle of the verb *valoir* in Old French that comes from the Latin verb *valere* meaning (to) be (of) worth. For this, see The Concise Oxford Dictionary of Current English, Seventh Edition 1982, at p. 1187. Valueless, accordingly, means worthless. The Sanskrit word *moolya*¹ comes from the word *mool* meaning root; and thus signifies that which is at the root (of anything). See *Vrihat Hindi Kosh*, (Jnanmandal Limited, Varanasi), p. 912.

ब्रह्मणाः । तेषाम् त्वयासनेन प्रस्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धयादेयम् । श्रिया देयम् । ह्या देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् ।²

Education is enlightenment. Education is empowerment. A man is not empowered in the true sense of the term unless he is also well versed in values that a civilized society esteems. Likewise, he is not enlightened in real sense if he does not see the world mirrored in him, and vice versa. Shorn of values, a man's knowledge is for argumentation, wealth for pride, and power for troubling others; while in combination with values the same stands for wisdom, gift and protection in that order:

विद्या विवादाय धनम् मदाय,

शक्तिम् परेषाम् परिपीडनाय ।

खलस्य साधोर्विपरीतमेतद्,

ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

Value education can be taken to mean that system of education which has (1) values at the very foundation of it, (2) its environs conducive to values, and (3) inculcation of values as its primary aim in a way that keeps the student vigilant about the ground realities as well as latest developments in the discipline concerned. In short, value education is the education in values, through values and for values; an education which does not permit itself or students to get divorced from values.

Of late, there is much talk about quality education. There should be no doubt that it is different from value education. That its emphasis is not on values but on the quality indicates that it is akin to value education only when value becomes the sole meaning of the world quality; which however is far from true. In other words a quality education can at best partially reflect the attributes of a value education, and never completely. For example, if we have teachers well dressed and speaking with fluency, class rooms and labs/libraries fitted with all types of equipments that the sci-tech has given us, well attired staff and grand buildings with sprawling lawns and vast playground, and, all the facilities of boarding and entertainment etc available within the premises it is sure to meet almost all the requirements of a quality education system. Still it can not be said with any amount of certainty that such a system also qualifies as a value education system. Indeed, value education means much more than a mere combination of latest infrastructural facilities and material sophistication.

Part II: Impact of Modern Living on Values

Today, the value of everything-whether man or matter- is measured primarily on the scale of money. Any thing capable of paying commercial dividends is most acceptable to us. Everything else can wait. Our notions of good and bad have been shaped likewise. A thing is good if it has a potential to make us financially healthy, otherwise it is you know what. Education is no exception either. The education that

² See *Taittiriyaopanishad, Ekadash Anuvak.*

brings with it job opportunities with six/seven figure salary and a lot of perks is all that is meant by a good education. Education is now an enterprise, rather than a mission, that is governed by input-output calculations:

“More significant is the shift in language through which the education enterprise is described. The language of specific outcomes enters account of education such that the transaction which takes place between teacher and learner becomes instead the relation between input invested and output expected. Education becomes one amongst several commodities competing for customers on the open market.”³

Values and education thereof have become the thing of the past; reserved only for those who do not understand the world we live in or, at best, those who still believe in an education system that is long gone and past. In this changed paradigm we find that:

“Value is measured by performance indicators spelt out in terms of economic relevance. Question about educational goals give way to questions about means to non-educational ends. .. Teachers no longer deliberate about the aims of education as part of their professional responsibility; instead they deliberate about the means to achieve externally imposed ends as part of their craft.”⁴

The modern man looks determined to get money through any which means so that he may command a respectable position in society; because he is convinced like anything that money is his ultimate saviour as it crowns all the merits. This desperation is reflected in various forms of corruption, criminality and, sometimes, frustration. The more we cling to this valueless system the more dejected we emerge. The climax is that even those who, we know are much ahead of us, stand equally dejected at the other end, and so on. The education that paid scant regard to values of life could not have led us to a better destination.

Part III: Role of the Teacher

In such a scenario, the role of the teacher becomes important. The student sees his role model in his teacher because he finds the latter preaching lofty ideals and falls in to believing that he who advocates for these values so convincingly must be living the values in his private life also. The best part of the day and the most part of his brain are devoted to the discourse given or debates chaired by his teacher. Even where his mind is exposed to more than one teachers he comes in to contact with, the student gradually but definitely develops a special liking for one teacher who he takes to be nearest to his ideal if not the ideal itself. And, the more time he devotes with the teacher the more impressed he is by the personality of the latter.

³ See, Chapter 9: Values and Education Policy, in the book entitled “Values in Education and Education in Values”, edited by J Mark Halstead and Monica J Taylor, published by Routledge 1996, at p. 110.

⁴ Ibid.

Saying goes that one is known by the company he keeps; because one develops good or bad habits principally by virtue of being in the company of persons who have cultivated those habits: “ संसर्गजाः दोष गुणाः भवन्ति ।” If the teacher’s impact on the taught is weaker than those of his companions he almost subconsciously is inclined towards the characteristics displayed by his friends and tries to copy them. Accordingly, he is attracted towards like-minded souls. Criminologists term this phenomenon as differential association, an important theory in explaining crime causation⁵. Once a student learns the joys of this new life, there is often no looking back.

When the parents send their wards to the school/college they are sure that within those precincts the child will get not only an opportunity to develop his personality by learning good things but also a care almost as good as that of the parents. Teachers must try to live up to these expectations. Presently, the percentage of such teachers seems to be miserably low as we often hear of the third degree treatment meted out to the children by their teachers.

At the college and the university levels, where the student is past his teens and has come to entertain a great deal his own notions of, say, good and bad; the role of a teacher becomes still more important because what the student requires is the depth of knowledge, soundness of approach and innovation of ideas all at the same time. A teacher who is found lacking on these fronts is likely to lose his impact on the students. At this level a student is in the most energetic and creative phase of his life and, hence, if the teacher fails to shape his ideas and emotions in a way that provides them the best channel for progress; the same energy etc is bound to go astray, may be even destructively used:

‘The teacher therefore must have expertise in that which is to be communicated and in the mode of understanding and motivation of those to whom those cultural traditions are being transmitted. Such an expertise lies in enabling young people to find the value where there is lack of interest, inspiration where once there was boredom, meaning where once (there) was ignorance.’⁶

Part IV: Value Crisis

The seers had always taught that one should adopt a selfless attitude even while enjoying material luxuries because, clarified they, contentment was the greatest pleasure:

ईशावास्यमिदम् सर्वम् यत्किञ्च जगत्याम् जगत् ।

⁵ See, E H Sutherland & Donald R Crassey : “Principles of Criminology” (1960) at p.78: “Criminal behaviour is explained as a product of learning in interaction with other persons, principally within intimate personal groups. It is assumed that any person inevitably assimilates the surrounding culture unless other patterns are in conflict.” Referred by Ahmad Siddique in his book ‘Criminology: Problems and Perspectives’, fifth edition 1994, second reprint 2001, at p.92.

⁶ See, J Mark Halstead and Monica J Taylor, op. cit., at p. 116.

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।⁷

However, such is the nature of *maya* (illusion) that the more one possesses the more one feels dissatisfied.⁸ The thirst becomes more and more intense and it is never satiated; as a result of which desires go stronger and stronger till it is the time for man to bid goodbye to this world.

On the other hand, if one knows the meaninglessness of worldly pomp and show, and is not ignorant of the reality that real pleasure and happiness do not come from material wealth but by acquisition of a state of mind where contentment reigns supreme; he will not only feel pleasure in living and letting others live equally well but would also not hanker for more and more money and luxuries. Instead, he will devote much of his time and energy in nobler tasks and the welfare of mankind rather than caring for himself and his family alone. When he achieves that state of thinking and living, all the virtues will automatically come to him and his way of living will display all the values a human life stands for.

But as we all know this is not the case. The industrial revolution that has been followed by scientific and technological revolution has left a tremendous impact on our approach towards life in particular and the world at large. For most of us, values are nothing except various aspects of material opulence. The more material aggrandizement means more progress and so on. The modern man, no matter which part of the globe he inhabits, is trying hard to get ahead of others in acquiring material wealth; and this is all that he wants come what may. The religious, moral, ethical, human and any other such values are in his opinion the matters for saintly discourse and are not even remotely related to his life and times. Talks of values, feels he, are for the escapists who can not confront the challenges of the present, and they deride material lust simply because they can not have it.

It is no wonder then that one can not but notice a fast erosion of values in all walks of human action and endeavour, so much so that there has arrived a stage in the march of mankind where there is a complete crisis of values. No matter where one goes, values are the last thing one thinks of. As a result, there is no dearth of instances which from a stand point of values are most deplorable; but which are not even looked in to by the modern man seriously because he does not feel the pinch he should.

And this must ring the alarm bells as it indicates that our sensibility is almost dead. Corruption, fraud, criminality et al are not unwelcome so long as they help us complete our designs to ensure material comfort for us.

⁷ The very first verse of *Ishavasyopanishad* enlightens us by this advice: “The God permeates whatever is there in the universe whether animate or inanimate. With (the realization of) that (God) enjoy it all selflessly. Do not get indulged in it; (because, after all) who does this entire (universe) belong to?” That is, it all belongs to the God and God alone; and not you.

⁸ It may be interesting to note that the word *maya* in Persian means money. *Sarmayadar*, accordingly, means capitalist.

Part V: Is the Teacher Responsible?

To answer the question in affirmative will tantamount to making the teacher a scapegoat for a mistake to which all of us are a party, while to answer otherwise would be overlooking a grave social reality.

An individual is the product of his culture and age.⁹ So is a teacher. In an atmosphere polluted by the onslaught of materialism, it is practically impossible for a man to remain uninfluenced. A teacher is not a teacher by birth; he passes through the childhood, adolescence, and adulthood in the same environment before becoming a teacher. There are fair chances that he is not unlike the most of the products of his age.

This however is too vulnerable a defence for the teacher. He occupies a position that is looked upon by the society with great reverence and expectation. Therefore he must live up to these expectations and try not to breach the faith society has posed in him.

Looked at from another angle, things appear to be far serious in his case. If one commits a breach of trust with the other it will adversely affect the latter alone or, at the most, a few other individuals. But if a teacher commits the breach of trust he has misled an entire generation and, thereby, done a disservice to the society. Thus if there develops a value crisis it is the teacher, more than anybody else, who is responsible; because a teacher is the torch-bearer of his society.

Part VI: Other Factors

Charity begins at home. Symbolically, it means that the child learns from the atmosphere where he lives. Mother being his first teacher a child learns his first lessons from his mother even before he has been to school. Likewise, his father, other members of the family, his neighbours, and relations also influence his behaviour.

We are living in an age where smoking, drinking etc is reckoned as gentleman's habit; extra marital affairs, and otherwise immoral relations are taken as a sign of advancement; what would have been theft, fraud etc yesterday is today an art everyone tries to get a mastery over; and material benefit has become the sole objective of all our endeavours. The talk of values, dharma, and morality are being frowned upon by most of us who believe that these are the vestiges of the past that need be best ignored. A few of us who still adhere to such values etc are fast earning the epithets of orthodox, superstitious, backward and the like.

The film and television, the major media of entertainment too seem to present a life style that is far removed from our roots and, hence, play a vital role in eroding our social and moral values. There appears to have set in a blind race in all walks of

⁹ See, Dias Jurisprudence, Fifth Edition, First Indian Reprint 1994, at p. 385, quoting Hegel.

life to get what we want by any means. The ends justify the means, so goes our thinking. From politician to the preacher the story remains the same.

It is thus that the proverb charity begins at home has another message for all of us. Our representatives, who do not hesitate in receiving money for asking questions they never thought, can not sound realistic while talking of a value-based politics; nor can the *babas* while teaching honesty, simplicity, selflessness etc once they are caught on camera boasting how, and with what percentage of commission, they may turn the black money white. The message is loud and clear: preaching shall not have the desired impact on the listener if it does not come from practice by the preacher himself, no matter how flowering the language or how powerful the diction is.

Social values can not sustain on teaching and the teacher alone if people in other arena pay little or no attention to realization of values individually. And when values become a living reality for all, the teacher's job would become easier. But it can not happen unless the education they had been imparted had enough of value-content in it. Therefore we are left with this vicious circle: unless people respect values, there is little that the teacher can do, and equally truly, unless people have been taught values there is little hope that they will respect them.

It is not easy to decide whether the things must start at the level of the society or the teacher first; but it will be better to begin at the level of the teacher himself because it is he who has the *vidya* which may lead us from evil to the good, from darkness to the light, and from mortality to immortality: असतो मा सद गमय; तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्योर्मा मृतम् गमय ।

Part VII: Efforts for Value Education

When we got independence, the need was felt for value education. The preamble to, and several articles of the Constitution reflect our regard for values. The new education policy of 1986 and SB Chavan Committee Report (1999) also emphasized on value education, and the National Council of Educational Research and Training (NCERT) was identified by the Ministry of Human Resource Development, Government of India as the nodal centre 'for strengthening value education in the country at the school level'. This was followed by launch of the National Resource Centre for Value Education (NRCVE) on September 14, 2000.¹⁰

In the year 2002 the NCERT itself took a national level initiative in the form of "National Programme for Strengthening Value Education" with an aim to sensitize parents, teachers, teacher educators, and other persons attached to policy making or administration of education in the country. The latest initiative has come in the form of National Curriculum Framework (2005) which has 'highlighted the values of democracy, human dignity and rights which provide perspective to the goals of

¹⁰See the page on value education on the website of NCERT; or, directly log on to: <http://ncert.nic.in/sites/valueeducation/valueeducation.htm> for more details.

education'¹¹; and has underlined the need of 'peace education' for which the NCERT developed new text books in 2006.¹²

On the global scale, a need to respect and realize certain human values available to all men was recognised in the Universal Declaration of Human Rights (1948). The human rights jurisprudence so developed soon became the key world for protection of human values, and an integral part of legal education. On the other hand, the United Nations Educational Social and Cultural Organisation (UNESCO) also devoted itself to the cause of promotion of values by sponsoring programmes world wide. This year, that is 2008, has been declared as the international year of languages by the UNESCO.¹³

Association for Living Values Education International (ALIVE), a non-profit making association of value educators, supported by UNESCO and a host of other governmental and non governmental organisations, coordinates its Living Value Education Programme (LVEP) around the world.¹⁴

The core values to be taught through LVEP are twelve, namely, love, humility, honesty, freedom, happiness, peace, respect, responsibility, simplicity, tolerance, cooperation and unity.¹⁵ The feedback received from all over the world indicates that the implementation of LVEP has had positive reflections. Educators have found that "aggressive behaviours decline as positive social skills and respect increase."¹⁶

ALIVE has published a number of books for different groups of learners including those for children aged 0-3, 3-7 and 8-14; for young adults, educators, and even one for parents.

Conclusion and Suggestions

On January 10, 2008 Pope Benedict XVI very aptly summed up the current scenario as one of 'educational emergency'. On the 21st he acknowledged that the difficulty in the education of the young people was caused by a gap between the generations, arisen out of 'the failure to transmit certainties and values'. The pontiff struck a cord of reality by enlightening us that 'even the greatest values of the past can

¹¹ See, the website of the NRCVE.

¹² Ibid.

¹³ For a detail of various activities of this UN body aimed at spreading value education among regular school children, street children, media men et al please visit the official website of UNESCO.

¹⁴ LVEP is currently being implemented in 85 countries at more than 8000 sites. While most sites are schools, other sites are day care centres, youth clubs, parent associations, centres for street children,, drug rehabilitation centres and refugee camps. The number of students doing LVEP at each site varies considerably; some involve 10 students while others involve 3000. LVEP got the support of the Education Cluster of UNICEF and the *Brahma Kumaris* (India) from the very beginning. The grass root associations helping in the implementation of LVEP are members of ALIVE and form its General Assembly which is the association's supreme power and decision making body.

¹⁵ Directors of ALIVE are one each from Switzerland, Spain, Senegal, China, Paraguay, UK, Lebanon, and Seychelles; and two from USA. Its International Advisory Committee consists of Geri Branch from Lebanon, Cyril Dalais from Mauritius, Bart McGettric from UK, Derek Sankey from China, Federico Mayor Zaragoza from Spain, and Dadi Janki from India.

¹⁶ See, Living Values Education: Overview (February 2007) by the ALIVE, at p. 6

not simply be inherited, we must make them our own and renew them through often difficult personal choices'. His Holiness made a fervent appeal to teachers and parents to counter the influence of a mentality that leads the people to doubt the value of human person and, hence, the goodness of life itself.¹⁷

Four years past, on February 9, 2012 we heard a class IX student stabbed her teacher inside a class in Chennai just because, as he put it, *she had scolded her*. And this, we know is but one of so many such incidents that take place in India (and, in all probability, also in other parts of the globe).¹⁸ A portion of the report, published in the Indian Express states:

“A class 9 student of a Chennai school stabbed his teacher to death on Thursday, apparently enraged that she should complain to his parents about his poor show in studies.

Science and Hindi teacher Uma Maheshwari, 40, of St Mary's Anglo Indian Higher Secondary School in north Chennai was sitting in a classroom in between periods when the boy attacked her around noon.

He stabbed her repeatedly, inflicting at least five deep wounds on her face, throat and stomach. Bleeding profusely, Uma Maheshwari died before she could be given medical help at a hospital nearby.”

Value education is the need of the hour and this realisation is present both on the national as well as global scales, and efforts are continuously being directed to make value education a reality in the life of the student rather than a mere subject of study for him. Talking purely in Indian context, however, a few points are yet to arrest the attention of the policy makers, it seems.

Firstly, the talk of value education is still being perceived as some thing exclusively for the children of impressionable age; and it is thought better to leave the matter thoroughly on the conscience of the student once he is past his teens. There is hardly a talk of value education in respect of higher education probably because the policy makers believe the former out of the purview of value education. The *Malviya Moolya Anusheelan Kendra* working at Benaras Hindu University stands almost as an exception in this regard when it advocates for thorough grounding in ethics and human values as an essential element of education in order to ensure the University becomes, in the words of *Malviyaji*, a ‘nursery of good citizens instead of only a mint for hallmarking a certain standard of knowledge.’¹⁹

¹⁷ For more details, see Catholic World News from Vatican on January 23, 2008; or log on to: <http://www.cwnews.com/news/viewstory.cfm?recnum=56143>. The Holy Father's message of January 21 was made public by the Vatican a couple of days later, ie.23.01.2008.

¹⁸ See, <http://www.indianexpress.com/news/chennai-scolded-class-ix-student-stabs-teacher-to-death/910032/>.

¹⁹ See the official website of *Malviya Moolya Anusheelan Kendra* (or, as it has been named in English, *Malviya Centre for Ethics and Human Values*), quoting the *Mahamana* from his speech while

Secondly, we seem to be quite indecisive on what are the core values which should be taught to the students. Although the National Curriculum Framework 2005 tries to be more specific in this regard while focussing on values like democracy, equality, justice, freedom, secularism etc and also pinpoints on peace-education as the most important; the NCERT is still groping in the dark as it enumerates only 84 key values!²⁰ Needless to say that it can, if anything, only make the matters more complex for the children. As can be seen easily, *if a student is made almost perfect (because perfection is an ideal), in even one or two of the key values like, say, freedom or responsibility or equality or honesty the rest would automatically follow.* If such logic seems a little impracticable, there is no harm in adopting a group of 6 or even twelve as in case of ALIVE; but identifying 84 key values reflects poorly on the approach of the nodal agency for educational research and training.

Thirdly, there is also an urgent need to do something for value sensitization of those who have bidden adieu to their student life (or, even for the illiterates in whatever profession they are). This is so because the value education requires a holistic approach. If we focus only on children up to their teens, and leave those in the higher education or those already educated or those not educated at all in a state of mind where they are; it may retard the rate at which the society will sensitize itself, and thus it will take a long time before we establish a society which may be fairly termed as a value-based society.

And, *fourthly*, unless we try to become honest in our approach and commitment towards value education and, accordingly, do whatever little bit is in our power, the value education shall remain an incomplete reality and the value based society a complete dream.

Therefore, it is humbly suggested that:

1. The value education should be so designed and enforced that it addresses all citizens irrespective of their age-group, profession or status of education. Suitable programmes must be designed and implemented to ensure value-sensitivity in all walks of life, keeping an eye on the fundamental differences between a regular student, and the rest of us as regards perception, appreciation etc.
2. No matter where he is everybody should try to become honest unto himself while formulating or implementing the policies of value education; or teaching, learning, applying, following, encouraging or disseminating value education as the case may be.
3. Every body is to be regarded as equal in so far as his responsibility and commitment to value education are concerned; but it will become the teacher to regard himself as the first among equals so that he not only leads from the front but

proposing the scheme for BHU in 1905. The Kendra honestly admits that 'this lofty vision of our founder remains unrealised'.

²⁰ See the official website of NCERT.

also by example, and, thus qualifies as a teacher in real sense of the term as once explained by Mahakavi Kalidasa:

शिल्पाक्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।
यस्योभयम् साधु स शिक्षकाणाम्
धुरिप्रतिष्ठा पयितव्य एव ।²¹

²¹See, *Mahakavi Kalidasa in Malvikagnimitram*: “Of the teachers some may epitomize a perfect grip over eclectic knowledge processes, while some others may be especially endowed with the craft of effective communication; but the one who blends both the virtues is the true torch-bearer of the great mission called teaching.”

Judicial Approach to the Issues Related With Age of Retirement of the University and College Teachers:

An Analysis

Guru Gyan Singh*

Abstract: Periodic revision of pay-scales of the university and college teachers is one of the measures designed from time to time to strengthen teacher component in higher education. It is integral part of the concept of 'co-ordination and maintenance of standard' in the institutions of higher education in the country. However, instances are in abundance that implementation of the schemes of revised pay-scales has always attracted heavy litigation on various aspects of the schemes. Age of superannuation of the university and college teachers is no exception. Almost, with every pay revision courts have been confronted with the issue of scope of State Governments' competence to accept or not to accept enhanced age limit of retirement. Judicial approach to the matter is quite settled that State Governments are free to adopt or not to adopt the scheme of pay-revision in its entirety or in parts. For, the circular issued by the Central Government and addressed to the State Governments specifically provide discretion to the State governments to accept or not to accept the scheme in part or in its entirety. Even if scheme is enforced through the Regulations made by University Grants Commission under University Grants Commission, Act 1956 leaving to the discretion of the State Governments to opt or not to opt the scheme, teachers do not earn or acquire any right to avail the benefit of the enhanced age limit of superannuation. It needs to be examined in context of the legislative and executive powers of the Central and the State Governments. All of these powers are subject to part three of the Constitution. The decision of the Central Government to leave it wholly on the discretion of the State Governments to adopt or not to adopt the scheme wholly or in part is bound to be based on some reasonable, just and fair grounds. Similarly, State Governments are not free to decide to opt or not to opt the scheme for any reason whatsoever. The reasons must be there at the time decision is taken. They should not be devised and engineered when matter is brought to the court of law. Meaning and scope of the expression 'co-ordination and maintenance of the standard' of higher education, also, needs to be revisited. Effects and implication of the new economic policy based on globalization and privatization, also, warrant an in-depth inquiry into the whole gamut of the matter.

Key words: Superannuation, co-ordination and determination, entry

Break –up:

1. Introduction

*Reader, Department of Law, University of Allahabad, Allahabad.

2. Problems of Increase in the Age of Superannuation and Its Implementation:

A Brief Historical Account

3. Judicial Approach

4. Analysis

5. Conclusion

1. Introduction

Role and importance of teacher in any system of education need no introduction. Classic Kothari commission has underlined that ‘of all the factors which influence the quality of education and it’s contribute to the national development, the quality, competence and character of teachers are undoubtedly the most important.’ Views¹ of this kind and class have ever impelled the individuals and organizations entrusted with the task of educational planning, administration and management to devise ways and means to attract and retain the most qualified and the best suited persons in the field of higher education. Provision of periodic revision of pay-scales and other conditions of employment of the university and college teachers are part of such measures. However, instances are enough to establish that implementation of the schemes of pay-revision is a big tributary to the flood of litigation in higher education². Age of retirement is no exception³. This article aims to enquire into the judicial response to the matters related with rise in the age of superannuation of the university and college teachers with special reference to recommendations of the Chaddha Committee made in this regard.

2. Problems Relating to Increase in the Age of Superannuation and Its Implementation: A Brief Historical Account

In the scheme of revised pay-scales based on Mehrotra Committee Report, the age of retirement of the university and college teachers was raised⁴ from 55 to 60 years. In the Report of the Rastogi Committee it was raised to the level of 62 years. Recommendation was, also, made to give re-employment to the retired teachers’ up to the limit of 65 years of their age. It was to be done in accordance with the norms laid down

¹ Report of Education commission 1964-66 Published by National Council of Educational Research and Training 1971 at p.497, National Policy On Education-1986, Ministry of Human Resource Development, Government of India, New Delhi, May 1986 at p.25, Courts And Education, Edited by Dr. Nicholas Appleton and Dr. Michael V. Belok, Anu Prakashan Meerut, 1979, at p.105

² Singh, G.G., Provisions of Preferential Treatment For Ph.D. Degree Holder Teachers In Higher Education: Effects and Implications-An Analysis Univ.Alld.Stud.(New Millen.. Ser.Vol.2, No.1, 2003 at p.28., Singh, G.G., Punareekshit Vetanman Kriyanvayan Vya vastha- Ak Vidhik Vishleshan, Vidhika, Varsh.3 Jan.-March. 1991 Ank:1 at p.40

³ State of Assam v Ajit Kumar Sharma, AIR 1965 SC 1196 has dealt with the question of acceptance of the increased age of superannuation of university teachers. It reflects that litigation on this matter had begun long back. And, it recurs with introduction of every new pay revision.

⁴ Prof. Manoj Kumar Sharma v Union of India & others, 2010 Lab.I.C 3457 (Raj.)at p. 3461

by the UGC⁵. Any special or distinct reason, apart from the general aim of attracting and retaining the competent persons in the field of higher education, was not given. Generally, State Governments have not accepted age of superannuation for the university and college teachers as recommended by different committees and it has every time culminated in fierce litigation⁶.

In the scheme of pay revision based on the Chaddha Committee Report age of retirement has been raised from 62 to 65 years. Scheme, also, provides for re-employment till the age of 70 years strictly in accordance with the rules and guidelines framed by the UGC⁷. It appears not to be confined to the general purpose of alluring most qualified and best suited person to join higher education. Scheme speaks of the problem of shortage of teachers, implementation of reservation in admission to the OBC candidates and the pronounced policy of expansion of higher education in XIth Plan.⁸ History has repeated itself and generally State Governments have not accepted the part of the scheme to the extent it relates to the age of superannuation and it has blazed the trail of litigation in different High Courts⁹ and Supreme Court¹⁰.

Teachers have approached the courts of law individually or in groups or through their associations. Their major contentions are that scheme of revised pay-scales has been promulgated by the Central Government under its executive authority. It is based on the recommendations of an expert committee set up by the UGC (University Grants Commission), which is an organization created by an Act of parliament under Entry 66 of list 1 of the Constitution to maintain the standards of higher education in the country. State Governments are bound to adopt and implement the scheme as such without effecting any modification thereto. Precisely, the state of interplay of constitutional provisions having direct and close bearing on the matters pertaining to higher education have been brought into focus. Teachers are, also, banking upon the provision that central financial assistance to the limit of 80% is to be given only on complying with the imperative condition that the composite scheme shall be implemented. Once the State governments have accepted the 80% grant, they can not back out.¹¹

⁵ B. Bharat Kumar & Others v Osmania University & others, 2007 Lab.I.C. 2517 at p. 2518

⁶ Ibid

⁷ Letter No.1-32\2006-U.II\U.I(I) Government of India , Ministry of Human Resource Development, Department of Higher Education, New Delhi, 31st December,2008, para 8(f)

⁸ Ibid

⁹ Cases have been filed in the Allahabad High Court, Rajasthan High Court, Patna High Court, Jharkhand High Court, Goa High Court, Punjab & Haryana High Court

¹⁰ S.L.P. No.30737 of 2010-Dr. Rajeev Kumar Govil & others v State of Uttar Pradesh & others, S.L.P. No. 32565 of 2010-Deo Narayan Pandey v State of Uttar Pradesh & others, S.L.P. no. 35327\2010- Dr. Hari Prakash Mittal & others v State of Uttar Pradesh & others, S.L.P. No. 2348\2010-Dr. Hari Prakash Mittal & others v State of U.P. & others, S.L.P. No. 2347\2010- Dr. Om Dutta Sharma & others v State of U.P. & others

¹¹ It is based on the reported decisions in B. Bharat Kumar & others v Osmania University & others, 2007 Lab.I.C. 2517, Prof. Manoj Kumar Sharma v Union of India & others, 2010 Lab.I.C. 3457 (Raj) and Y.N. Gupta v State of Jammu & Kashmir 1993 Lab.I.C. 1193 (J&K)

On the other hand, State Governments are contending that the scheme has been promulgated by a letter of the MHRD (Ministry of Human Resource Development) that is not a piece of legislation nor has the force of law. The scheme as circulated itself provides in express and categorical terms that States may adopt the scheme if they wish so. State Governments are not bound thereby. They are free to accept or not to accept the scheme fully or in part¹². The Government of State of Uttar Pradesh has advanced some additional grounds that increase in the age of retirement of the teachers of the State universities and colleges affiliated therewith, will deprive the duly qualified educated unemployed youth from the equality of opportunity to try to get public employment. It would worsen the condition of unemployed educated persons. State Government has already made provision to allow teachers to continue to work till the expiry of the academic session in case the date of their retirement happens to be after 1st July of the relevant session. Laws have, also been made to re-employ the retired teachers as guest faculty on contract basis.

Controversy veers around the meaning and scope of the following part of the scheme of revised pay-scales for the university and college teachers:

8(p) Applicability of the Scheme

(v) The scheme may be extended to universities, colleges and other higher educational institutions coming under the purview of State legislatures, provided State Governments wish to adopt and implement the scheme subject to the following terms and conditions:

(P) (v) (g) Payment of Central assistance for implementing this Scheme is also subject to the condition that entire scheme of revision of pay scales, together with all the conditions to be laid down by the UGC by way of Regulations and other guidelines shall be implemented by State Governments and Universities and Colleges coming under their jurisdiction as a composite scheme without any modification except in regard to the date of implementation and scales of pay mentioned herein above”¹³

Almost similar provisions were incorporated in the schemes of pay revisions based on the recommendations made by the Mehrotra¹⁴ and Rastogi¹⁵ committees. A plain reading of the aforesaid applicability condition would reveal that State Governments are not under any legal duty to accept the scheme in its entirety or in part. However, if they choose to accept the scheme, they would have to accept it in its entirety except the date of implementation and the scale of as the case may be. Their

¹² Ibid

¹³ Supra note 4 at p.3460-61

¹⁴ Infra note 25 at pp.1195-96

¹⁵ Supra note 5 at pp..2518-19

failure to abide by the condition of accepting the scheme would, to the maximum, cost denial of additional financial assistance of 80 % to implement the scheme.

3. Judicial Approach

Patna¹⁶ and Jharakhand¹⁷ High Courts have subscribed to the teachers' line of arguments that increase in age of superannuation based on Chaddha Committee report is covered by the Entry 66 of the List I and States are bound thereby. Allahabad¹⁸., Calcutta¹⁹, Punjab & Haryana²⁰, Rajasthan²¹, Kerala²² and Andhra Pradesh²³ High Courts have held otherwise i.e. State Governments are not bound by the provisions of the scheme as contained in the letter issued by the Central Government and addressed, inter alia, to them. And, this approach has, already, been upheld by the Apex Court²⁴. 'In the case of State of Assam v Ajit Kumar Sharma, reported in AIR 1965 SC 1196, it has been clearly held that it is for the Colleges or the State governments, as the case may be, to accept or not to accept the recommendations or the Grants-in-aid from the University Grants Commission and that these in any event are not binding upon the colleges or the State Governments. The Court has gone even to the extent of holding that even after accepting the recommendations of UGC in their entirety, if a particular college does not implement the scheme and commits any breach of the terms thereof, a teacher by himself will have no cause of action against the college concerned and it will not be open to such a teacher to agitate against the matter or to enforce the scheme or a part thereof. In such cases the Government would have right to withhold the grant in aid'²⁵. In another case²⁶ it has been observed that it is open to grave doubt whether recommendation of body like University Grants Commission can give rise to rights and obligations enforceable in a court of law.

¹⁶ File:///C:/Document%20and%20Settings/A/My%20Documents/Retirement%20Age%20of%20E, In Prof.Ravindra Prasad & others v State of Bihar & others, 2008 Lab.I.C. 3007 (Pat.) , issue of application of the age of superannuation of the university and college teachers came for decision . The single judge of the Patna High Court held that teachers covered by State Universities were not covered by the law meant for Central Universities and institutes financed by the Central Government. But the Division Bench of the High Court has ruled that as the State government has adopted the scheme, it applies to the teachers of the State Universities.

¹⁷ File:///C:/Document%20Settings/A/My%20Documents/Retirement%20Age%20of%20 (India Education Review,Jan,14,2011

¹⁸ Prof.C.P.Jha & others v Vice Chancellor, University of Allahabad & others, (2000) 2 UPLBEC 1134(All.)

¹⁹ File:///C:/Document%20and%20Settings/A/My%20Document/The%20Telegraph%20-%20-%20Cal

²⁰ 'The Tribune' Monday, March, 2011 Chandigarh, India, In Dr.A.C. Julka & others v Punjab University & others 2009 Lab.I.C.1857 (P&H) a Division Bench of Punjab & Haryana High Court has held that Punjab University is neither a Central University nor an institution wholly financed the Central Government to the requisite extent. So, the Central law providing for increased age of retirement does not apply thereto.

²¹ Prof. M.K. Shharma v Union of India & others 2010 Lab.I.C 3457 (Raj.)

²² B. Bharat Kumar & others v Osmania University and Others, 2007 Lab.I.C.2517 (SC)

²³ Ibid

²⁴ T.P.George & others v State of Kerala & others[(1992) Suppl. 3 SCC 191, B. Bharat Kumar & others v Osmania University & others 2007 Lab.I.C. 2517 (SC),

²⁵ Dr. Y.N. Gupta v State of J & k , 1993 Lab.I.C.1193 (J&K) at p.1202

²⁶ The State of Maharashtra v Association of Maharashtra Education Service A.I.R. 1974 SC 2184

Regarding the contention of the teachers that as the State Government has accepted the UGC scheme of revised pay scales, it is bound to implement the composite scheme without modification, a Division Bench of Kerala High Court has observed that ‘Firstly, as already stated the UGC scheme does not become applicable because of any statutory mandate making it obligatory for the Government and the Universities to follow the same. Therefore, the State Government had the discretion either to accept or not to accept the scheme. In its discretion it has decided to accept the scheme, subject to one condition, namely in so far as the age of superannuation is concerned, they will not accept the fixation of higher age provided in the scheme. The State Government having thus accepted the scheme in modified form, the teachers can only get the benefit which flows from the scheme to the extent to which it has been accepted by the State Government and the concerned universities. The appellants can not claim that the major portion of the scheme having been accepted by the Government, they have no right not to accept the clause relating to fixation of higher age of superannuation.’²⁷

It has further, been clarified that it is for the University Grants Commission to extend the benefit of the scheme or not to extend the benefit of the scheme , depending upon its satisfaction about the attitude taken by the State Government in implementing the same. That is a matter entirely between State Government on one hand and the UGC on the other. Teachers can not claim as a matter of right that they are entitled to retire on attaining the age as recommended in the scheme promulgated by the Central Government²⁸. Supreme Court has approved and upheld the said line of reasoning of the Kerala High Court in its decision in T.P. George & others v State of Kerala & others [1992 (Suppl) (3) SCC 191] and observed:

“We may clarify the scheme referred to UGC (University Grants Commission) Scheme of 1986 framed by the Government pursuant to the Mehrotra Committee Report. We may further point out that it is clear from the paragraph 4 of the circular dated 17 th June 1987 , addressed by the Ministry of Human Resource Development , Department of Education , to the Education Secretaries of all the States\ UT (Union Territories) that adoption of the scheme was voluntary, and only result which might follow from the State government not adopting the scheme might be that it may get the benefit of the offer of re-imburement from the Government to the extent of 80% of the additional expenditure involved in giving effect to the revision of the pay scales as recommended by the scheme”²⁹

²⁷ Referred to in the case reported as Prof. Manoj Kumar Sharma v Union of India & others, 2010 Lab.I.C. 3457 (Raj.) at p.3461-62

²⁸ Ibid

²⁹ Ibid

The other important case on this matter is *B. Bharat Kumar & others v Osmania University & others*.³⁰ Arguments advanced by the appellants and the respondents were on the set lines. Appellants contended that the State Government and the university were bound to implement the whole of the scheme. There was no discretion left with them in view of the scope of Entry 66 of the list I of the Constitution and the scheme was to be adopted only in its entirety and implemented accordingly. There was no scope for any modification therein by the State government. Respondents opposed it and asserted that State Government was fully free to adopt or not to adopt the scheme and cited *T.P.George's* case as an authority on the subject. Supreme Court followed its own decision and observed:

“In spite of our best efforts, we have not been able to follow as to how the judgment of Kerala High Court, which has been approved by this Court, is, in any manner different from the factual situation that prevails here in this case. It is for this reason that we have extensively quoted not only the aforementioned letter dated 27-7-1998 but the subsequent letters and further policy statement. Plain reading of all these is clear enough to suggest that the scheme was voluntary and it was up to the State Governments to accept or not to accept the scheme. Again even if the State Government accepted a part of the scheme, it was not necessary that all scheme as it was, had to be accepted by the State Government. In fact the subsequent developments suggest that the State Government has not chosen to accept the scheme in full in as much as it has not accepted the suggestions on the part of the UGC to increase the age of superannuation”³¹

Regarding the arguments based on the effect and implications of the interplay of the relevant constitutional provisions bearing on the Centre- State relation with reference to higher education, Court has opined that:

“Once we take this view on the plain reading of the scheme, it would be necessary for us to take stock of the subsequent arguments of Mr. Rao regarding Entry 66 in the List I vis-à-vis Entry 25 in the List III. In our opinion, the communication even if they could be heightened to the pedestal of a legislation or as the case may be, a policy decision under Article 73 of the Constitution, they would have to be read as they appear and a plain reading is good enough to show that the Central Government or as the case may be UGC also did not introduce the element of compulsion vis-à-vis the State Government and the universities. We, therefore, do not find any justification in going to the Entries and in examining as to whether the scheme was

³⁰ 2007 Lab.I.C. 2517 (SC)

³¹ Ibid at p.2523-24

binding, particularly when the specific words of the scheme did not suggest it to be binding and specifically suggest it to be voluntary.”³²

Apex Court observed that principles of law discussed in Prof. Yashpal & another v State of Chhatsgarh & others³³ are distinct and distinguishable from that of the issue of age of retirement.

“Yashpal’s case was on entirely different issue. There the controversy was relating to legislations creating number of universities. The question there was as to whether the State Government could create so many universities and whether the legislation creating such universities was a valid legislation, particularly in the view of the fact that the subject of higher education was covered under Entry 66 of the List I... Such is not the subject in the present case. Here is the case where there is no legislation....In our considered opinion all those cases relate to the legislative powers on the subject of education on the part of the State Government and the Central Government. In the present case we do not have any such legislation for being considered. Where the scheme itself gives the discretion to accept apart of the scheme and not the whole thereof, it would be perfectly within the powers of the State Government not to accept the suggestion made by the scheme to increase the age of superannuation”³⁴

It needs to be underlined that some Courts even while not agreeing with teachers’ contentions have recommended the State Governments to consider to implement the increased age of retirement of teachers.³⁵

4. Analysis

It emerges from the above that problem under study could be approached from three major angles. One, that it has never been case of the State Governments that age of superannuation of the university and college teachers is not covered by the import of the expression “co-ordination and determination of standards, in institutions, for higher education or research and scientific and technical institutions”. Though Patna³⁶ and Allahabad³⁷ High Courts have made observations that the

³² Ibid, at p. 2524

³³ Ibid at p. 2522

³⁴ Ibid

³⁵ Justice Markandey Katju, the then judge of Allahabad High Court made strong recommendation to the State Government to enhance the age of superannuation of the university and college teachers in Prof. Chandra Prakash Jha & others v Vice- Chancellor, University of Allahabad & others, 2000 Lab.I.C 3152 (All.) at p. 3157. It appears to be in keeping with the approach of the High Court towards the matter. A Division Bench of Supreme Court made similar recommendation to the Government of West Bengal, ‘The Telegraph’, Calcutta, India, Feb. 23, 2010

³⁶ Ranjit Singh Gandhi v State of Bihar, 2000 Lab.I.C.2787 (Pat.) at p. 2795 “ The UGC as stated above, has power to make law with regard to the aforesaid matters , but in my view, the same will not include power to determine the age of superannuation of a teacher of university who has to be appointed under the said scheme in the manner provided therein Maintenance, co-ordination and

meaning and scope of Entry 66 of the List I of the VII th schedule of the Constitution does not include determination of the age of superannuation of the university and college teachers. However, there is nothing in detail to explain the basis for the aforesaid finding of the both of the High Courts. Pronounced purpose of the pay-revision scheme is to attract and retain the most qualified and the best suited persons in the field of higher education. It is not easy to ascertain how far enhanced age of superannuation would and could contribute in realization of the declared objectives. Factors in this regard may vary from time to time.

Two, that the age of superannuation is covered by Entry 25 of List III and unless there is any law enacted by the parliament on this subject, State Governments are free to deal therewith according to their own 'wishes'. And, third one is that age of superannuation forms integral part of the Entry 66 of the List I and the nature of the liability of its implementation depends upon the nature and scope of the instrument whereby scheme is introduced and is intended to be enforced.

It appears that generally State Governments have accepted the whole of the schemes of revised pay-scales except the provision enhancing the age of superannuation. For, they are free to decide in this regard on their own. It is logical that when the relevant law itself provides freedom in express, unqualified, plain and unequivocal terms to accept or not to accept the whole of the scheme or any of its part, it could not be said that State Government is exercising its discretion in regard thereto, against any provision of law.

However, it is equally settled principle that every State action must be informed with reasons, that too, having rational nexus with the object sought to be achieved thereby. 'The power of the discretion of the Government in the matters of grant of largess including award of job...must be conditioned and structured by rational, relevant and non-discriminatory standard or norm and if the government departs from such standard or norm in any particular case or cases, the action of the Government would be liable to be struck down, unless it can be shown by the Government that

determination of higher education even interpreted in the widest sense, in my view, does not empower the UGC to provide the age of superannuation of a teaching and non-teaching staff of the University and as such the said provision in the scheme of the UGC is beyond the legislative competence and the State is not bound to act in accordance with the provisions of the scheme regarding determination of the age of superannuation."

³⁷Prof.C.P.Jha & others v Vice-Chancellor, Allahabad university & others, 2000 Lab.I.C. 3152 (All.) at p. 3154 "As regards the contention that age of retirement of a university teacher is a matter covered by Entry 66 List I, we are not in agreement with this submission . Entry 66 of List I has to be harmonized with Entry 25 of List 3Entry 66 of List I refers to co-ordination and determination of standards in the university. Other matters relating to Universities are not covered by Entry 66 of List I but by Entry 25 of List 3 In our opinion fixing of the age of superannuation has nothing to do with co-ordination and determination of the standards of the education, and hence, they pertain only to Entry 25 of List 3 of the VII Schedule.

departure was not arbitrary, but was based on some valid principle which is itself not irrational, unreasonable or discriminatory.³⁸

It ordains to undertake an inquiry discerning the basic reason behind the discretion given to accept or not to accept the scheme. The range of reasons may be in form of legal constraints which do not permit to compel the State Governments to accept the scheme in its entirety. In course of time, implementation of the scheme is bound to entail heavy expenditure. States are free to assess their economic and financial conditions and accordingly decide to accept or not to accept the scheme in its entirety or in parts as the case may be³⁹. State of Uttar Pradesh preferred not to accept the increased age of retirement as it would be costlier than appointing new teachers and would, also, worsen the condition of unemployed highly educated youth in the State.⁴⁰ Increase in the age of retirement of the university and college teachers falling under the jurisdiction of the State Governments could open flood gate of demands from various sections of the government and quasi –government employees, also, to raise their age of retirement. Age of superannuation of the teachers of the Degree and Post-graduate colleges owned and administered by the State Governments is the same as applicable to the other employees of the concerned Government⁴¹. It could in some conditions be difficult for the governments to resist the demands particularly in election years or it might not be possible because of the financial condition of the State. Such expenditures are, generally, termed to be non- productive and entail adverse impacts on the quantum of allocation for developmental plans and projects. The extent of the authority of States in relation to higher education is to be governed by the meaning and scope of Entry 25 of the List III. And, that is subject to Entries 63, 64, 65 and 66 of the List I of the Constitution. Executive powers are said to be co-terminus with the Legislative powers⁴². Meaning thereby that the scope of the executive authority of the Government extends to the limit set for the making of laws by the relevant legislature. Parliament or the Central government could not allow the State Governments not to act in accordance with the laws made thereby under the Entry 66 of List I of the Constitution for any reason whatsoever. If any exemption is permissible it must be based on just, fair and reasonable

³⁸ D.T.C. v D.T.C. Majdoor Congress, 1991 Lab.I.C. 91 at p. 174, Also see at pp. 8 82-888 of the Indian Constitutional Law by Prof. M.P.Jain Fifth Edition Reprint 2008

³⁹ Right to education as given in Article 41 of the part four of the Constitution extends to include right to higher education that implies availability of duly qualified and adequate number of teachers. And, that right is confined to the limits of economic capacity and development of the State concerned.

⁴⁰ It is evident from the counter affidavits submitted on the behalf of the State Government in the Allahabad High Court in cases filed against the decision of the State Government not to raise the age of retirement in accordance with the recommendations of the Chaddha Committee Report. In Indian institute of technology, Kanpur v Raja Ram Verma & others 2011 Lab.I.C.652 (SC) at p.657 it has been observed: “This Court must remember that in the segment of white collared employees, opportunities are quite few and there is a burning unemployment problem. Therefore,, if considering the ground realities the government fixes 60 years as the age of retirement for certain categories of employees , the Court should be very slow and circumspect before interfering with such decisions.”

⁴¹ In Dr.(Miss) S.L. Sud v Union of India & others , file:///C:/Documents%20and%20Settings/A/My/%20Documents/DR%20(MRS)%20SL State of U.P. & others v Dr. Ramesh Prasad 1996 SCC (7) 385

⁴² Shukla, V.N. Constitution of India, Tenth Edition Reprint August,2003 at p.477

grounds. Otherwise the Central law or order as the case may be, may itself suffer from the vice of ultra virus of the Constitution⁴³.

Schemes of revision of pay scales invariably provide the qualifications-academic and otherwise- for direct appointment or by way of promotion on the posts of different kinds of teachers as well as higher pay- scales i.e. senior and selection grades. Procedures are, also, laid down to implement the designed measures. In case, a State government accepts the provision of enhanced age of retirement but does not accepts the part of the scheme dealing with qualifications for appointments-direct or by way of promotion, performance appraisal and advance increment for their academic achievements. Would it be open to challenge? If answer is in affirmative, who will have locus standi and what grounds will be available therefor? In view of the existing precedents, there is all possibility that State Government's decision would be valid.

However, UGC is empowered to prescribe qualifications through its Regulations⁴⁴. They have force of law. Unless the States are not exempted from their operation, they are bound to comply therewith⁴⁵. For, the State laws are subject thereto and candidates satisfying UGC qualification would be competent to raise the issue of the precedence of the UGC qualifications over that of the States'. Their attack could, also, be based on the infraction of right to equality of opportunity in the matters related with public employment. It is well established principle that the conclusive test of violation of fundamental rights is not the form of action of the State rather its effect and impact on the complainant⁴⁶.

University of Delhi v Raj Singh & others⁴⁷ is a leading case dealing with the compliance with the qualifications laid down by the UGC Regulations. In case a university fails to comply with statutorily prescribed educational requirements, UGC is vested with power to withheld financial grants from such university but it could be done only after due consideration of the case of the erring university⁴⁸. In the same vein it has, also, been observed that that 'it would also be open "in specific cases "', for the university

⁴³ Article 245 (1) of the Constitution provides that Parliament's legislative power is subject to its provisions. These provisions include fundamental rights. Retirement is covered by the meaning and scope of the expression 'equality of opportunity in the matters related with public employment'. So, the laws dealing therewith must survive on the touchstone of equality before law and equal protection of laws.

⁴⁴ Section 26 (1) (e) of the University Grants Commission Act, 1956

⁴⁵ First and foremost question is to decide whether qualifications are covered by the meaning and scope of the expression 'co-ordination and determination of standards'. Even if reply is in affirmative, in view if section 14 of the University Grants Commission Act, 1956 State Governments can not be compelled to opt and implement. However, once State Governments opt to implement the scheme, they can not be allowed to deviate there from. Power to exempt any State Government or the University is required to be subject to the dictates of Article 14 of the Constitution.

⁴⁶ Shukla, V.N., Constitution of India, Tenth Edition Reprint 2003 at p.33

⁴⁷ AIR 1995 SC 336

⁴⁸ Ibid at p.349

to seek prior approval of the U.G.C. to relax these requirements.’⁴⁹ It emanates from the above that discretion of the State Governments not to accept the scheme as a whole or any of its part should have some rational basis. They should not be allowed to wish not to accept the scheme for the sheer and mere sake of their ‘wish’. In some Special Leave Petitions⁵⁰ filed against the decision⁵¹ of the Allahabad High Court it has been stated that there is nothing on record to establish that the State Government’s decision not to accept revised age of retirement is based on due consideration of the matter on its own or taken in consultation with UGC⁵²

Union of India has been arrayed as a respondent in some cases⁵³ involving the issue of application of the .increased age limit for retirement of university and college teachers. And, on its behalf it has been vigorously argued that that scheme of revised pay- scales is not binding on the State Governments. It has , also, been said that if any of the State Governments \ universities opt not to comply with the scheme of qualifications and age of superannuation as laid down by the UGC Regulations , the consequence is confined to forfeiture of the financial assistance⁵⁴. There is the other side of the coin. In the light of the ‘Gujarat university case it can be fairly presumed that the power of the Union in the field of education, in so far as it is directed to secure co-ordination and determination of standards, is absolute and unquestionable. This power necessarily implies the power to give directions for that purpose by virtue of article 256. The weight of such decision is quite evident from article 356 which provides that in the event of disobedience of, or failure to comply with, the directions lawfully given by the union to the states the President can hold that a situation has arisen in which the government of the state can not be carried on in accordance with the provisions of the Constitution’⁵⁵

In the scheme of revised pay scales based Chaddha Committee Report, reason for rise in the age of superannuation is not confined to its general objective to attract and retain the competent and talented persons in the field of higher education. Shortage of teachers appears to be the dominant factor. Firstly, shortage of teachers is not a permanent phenomenon. Instances are that State Governments have already evolved measures to avail the services of the retired teachers for teaching and research purposes. State Governments could decide to accept or not to accept the scheme after assessing

⁴⁹ Ibid, as per provisions of section 14 of the UGC, Act 1956, UGC can withhold the grant and other financial benefits to the State Governments in case of their failure to comply with its recommendations and Regulations.

⁵⁰ S.L.P. No. 35327\2010-Dr.Hari Prakash Mittal & others v State of U.P. & others,

S.L.P. No. 2347\2011- Dr. Om Dutta Sharma & others v State of U.P. & others

⁵¹ S.L.P.s have been filed against the order date 07-04-2010 passed in the Civil Writ Petition No.51 (S/B) of 2010- Indra Deo Dwivedi v Union of India & others whereby petition has been dismissed holding that the State Government is well within its power in not implementing the revised age of retirement.

⁵² Supra note 49

⁵³ Y.N. Gupta v State of J & K & others, 1993 Lab.I.C. 1193 at p. 1198

⁵⁴ Supra note 29 and supra note 47 at p. 350.

⁵⁵ Educational Planning: It’s Legal and Constitutional Implications in India, 1967, edited by G.S.Sharma. at pp.49-50 , also see p11

their capacity and capability to effectively cope with the problem of shortage of teachers. OBC reservation in admission to the institutions of higher education under the jurisdiction of State Governments is in vogue since long. Therefore, such reasons could not be said to be valid ones equally for the State Governments and the Central Government.

The source of power of the State Governments not to accept the scheme of revised pay scales and other related matters in its entirety or in parts is the very provision to the effect incorporated in the instrument circulating the scheme to the States/ Union territories. There is nothing in the relevant provision express or implied for guidance of the exercise of that power. Fixation of age of retirement has been held to be a policy matter⁵⁶ and accordingly State Governments should be free to decide the matter by taking into account their local conditions. It is equally settled principle that policy matters and power to decide them are not above the concept of the rule of law that is foundation stone of the Indian system of governance⁵⁷. Colorable exercise of power is quite alien to our constitutional creed, belief and faith.

This is an era of knowledge explosion and economy is knowledge economy. Society is being termed as a knowledge society. ‘Competition in the field of higher education is bound to increase. Quality of product would be main objective. It needs to be noted that to compete successfully in the knowledge based economy of 21st century India needs enough universities that can not only produce bright graduates for export but can, also, support sophisticated research in number of scientific and scholarly field and provide at least some knowledge and technology needed for an expanding economy. How can India build a higher education system that will permit it to join developed economies?’⁵⁸ Institutions of higher education and research are the vanguard of the creation, transmission, propagation and transformation of knowledge⁵⁹. It mandates that scheme of revised pay scales and matters related therewith must be geared and directed to raising and maintaining the standard of higher education to the comparable optimum level. Such states of things underline the need of progressive and purpose oriented construction of the crucial components of the scheme.

5. Conclusion.

⁵⁶ Nagaland Senior Govt. Employees Welfare Association & others, 2010 Lab.I.C. 3289 (SC) at p.3301

⁵⁷ Delhi Transport Corporation v Delhi Transport Corporation Majdoor Congress, 1991 Lab.I.C. 91 (SC) at p. 188 “ It is indeed unthinkable in a democracy governed by rule of law, that the executive Govt. or any of its officers should possess arbitrary power over the interest of the individual.....The procedure adopted should match with what justice demands”

⁵⁸ Philip G. Altabach, ‘Higher Education in India’, ‘Hindu’ <http://www.thehindu.com/2005/04112>
⁵⁹ Supra note 55 at p. 13, “Higher education, generally, and scientific and technological education in particular, is the sine qua non of a rapid industrial and economic growth of the country which in turn is indispensable for the validity of constitutional government itself, not to speak of other values, in the country. It was necessary, therefore, to make the all India resources available for planning higher and technical education in this country.”

It emerges from the above that increase in the age of superannuation of the university and college teachers has been recommended by different expert committees forming part of the general objective of the provision of periodic pay revision to attract and retain the most qualified and best suited persons in the field of higher education. It seems that State Governments have, generally, accepted the schemes sans the recommendation\ suggestion to increase the age of retirement. It has invariably led to litigation up to the level of the Apex Court. Inquiry into the matter has primarily been directed to find the source of authority that sustains the decisions of the State Governments not to accept the enhanced limit of the age of retirement

It appears that no pain has been taken to enquire into the constraints of the State Governments responsible for their decisions not to accept increased age of retirement, much less in their different dimensions. The very source of power itself does not provide any express or implied ground for its being exercised. 'Wish' of the State Government is not that of a despot or a dictator. It is to be formed in context of the powers, functions and responsibilities of the concerned State Government. The 'wish' of this kind and genre does not originate in vacuum, rather amidst the living realities of a society committed to the constitutional system of governance founded on the principle of rule of law. Many a times, policies are framed under pulls and pressures of divergent interest groups⁶⁰. India is in severe grip of the cancer of corruption. It is, also, struggling to ensure to the optimum transparency and fairness in public administration through the additional tool of the right to information. In this context State Governments should duly consider the whole scheme and its resolve not to accept the age of retirement in terms of the recommendations must reflect to be based on cogent, convincing and germane grounds. Use of the expressions like 'discretion', 'policy matters' and 'public interest' in order to substantiate the logic that States are free to accept or not to accept the scheme, is not unfettered. It carries with it well defined restrictions and limitations⁶¹.

Nature of the document detailing the schemes of the revised pay scales has been repeatedly employed to demolish the basis of the teachers' right to challenge the decision not to implement the provision of age of superannuation and invocation and application of the overriding powers of the Central Government. State Governments' decisions in this regard should be supported by the sound and genuine reasons to be valid and legitimate in the prevailing conditions and climate of corruption and abuse of power.

⁶⁰ In Karnataka State Private College Stop- Gap Lecturers Association v State of Karnataka & others (AIR 1992 SC 677) has underlined the way of making of adhoc appointments of teachers by taking into account extraneous considerations. Recently in an article authored by an eminent person Sundip Mundle and published in 'The Times of India', Allahabad, Thursday, March, 31, 2011 at p.10 columns 3-7, along with other things, it has been said that with the introduction of the revised pay scales for university and college teachers bribery has increased.

⁶¹ Ibid at p.174 "It must, therefore, be taken to be law that where the Government is dealing with public, whether by way of giving jobs or entering into contract.....the Government can not act arbitrarily at its sweet will, and like a private individual deal with any person it pleases, but its action must be in conformity with standard or norm which is not arbitrary, irrational and irrelevant."

Supreme Court is seized with the opportunity again to examine the matter in depth by taking into account factors closely related therewith. There is higher degree of possibility that it would not very easily deviate from its earlier pronouncements, rather would honor, re- approve and re-affirm them. However, factors like increase in life expectancy would deserve consideration. Services of the existing competent and experienced teachers could be availed for longer duration but it should not be at the cost of the highly qualified, competent youth willing to join the stream of higher education with passion for teaching, research and acquisition of knowledge. Public employment has been termed to be a new kind of public property and every citizen is entitled to share in it. Its distribution involves interplay of Articles 14, 16 (1), 19 (1) (g), and 21 along with relevant provisions of Part IV & IV- A of the Constitution.⁶² Age of retirement involves termination of employment, i.e. source of income and means of livelihood. It means and implies that fixation of age of retirement must be founded on relevant, reasonable, just and fair grounds. In *Delhi Transport Corporation v Delhi Transport Corporation Majdoor Congress*⁶³ Apex Court has observed:

“It would further be held that right to public employment which includes right to continued public employment till the employee is superannuated as per rules or compulsorily retired or duly terminated in accordance with procedure established by law is an integral part of right to life assured by Art. 21 of the Constitution. Any procedure prescribed to deprive such a right to livelihood or continued employment also must be just, fair and reasonable procedure. In other words an employee in a public employment also must not be arbitrarily, unjustly and unreasonably deprived of his\ her livelihood which is ensured in continued employment till terminated in accordance with just, fair and reasonable procedure. Otherwise any law or rule in violation thereof is void.”⁶⁴

It emanates from the above account of facts and circumstances that area and scope of the discretion of the State Governments to accept or not to accept the scheme of revised pay scales in its entirety or in part should not be allowed to extend to the arbitrary limits. Meaning and scope of expression ‘co-ordination and determination of standard, in institutions, for higher education or research and scientific and technological institutions’ is, also, subject to our constitutional creed and commands. Justice Markandey Katju, now a judge of the Supreme Court has underlined in *Prof.C.P.Jha’s* case that age of superannuation does not form part of the import of the expression ‘co-ordination and determination of the standards’ in higher education. Similar approach appears to be taken in *Y.N. Gupta’s* case by the single judge of Jammu & Kashmir High Court. It is an important aspect and deserves an intensive investigation.⁶⁵

⁶² Ibid at p.176

⁶³ Ibid

⁶⁴ Ibid at p. 190

⁶⁵ Prime purpose of the scheme of pay-revision is to attract and retain the most qualified and the best suited persons in the field of teaching and research in higher education. It is quite difficult to give a

Rising participation of private sector in the field of higher education and withering away of the concept of the job security, ascending dominance of performance factor in the sphere of employment need to be considered in formation of policies and programs for development of the system of higher education in the country. Power to 'co-ordinate and determine the standard of higher education' includes the power to evaluate, harmonize and secure proper relationship to any project of national importance. It is needless to say that such co-ordinate action in higher education with proper standards, is of paramount importance to national progress. In this context, the legislative field relating to higher education has been distributed between List I and List III of the Constitution.⁶⁶ Higher education has been brought in the concurrent list of the Constitution to catalyze co-operation between Centre and States and intensify their efforts to expand and strengthen the system of higher education, so that it could be exploited to the optimum to contribute in national development and well-being of the people. Such factors should, also, be taken into account in construing the relevant provisions of law. Any efforts and exercises in this regard should, also, seek help from the disciplines of human resource development and management and public administration. It would be better to make the things clear so that scope and opportunity for litigation could be minimized.

precise list of the factors that could be expected to contribute in realization of the objectives. Such factors may also, change with the passage of time. For instance, job preference has widely changed in the era of globalization and privatization. Provision of pension has been drastically changed, though it formed very attractive feature of the government services in the past. Measures devised to attract and retain the best qualified candidates could, also, be subjected to judicial enquiry. In *Dr. Preeti Srivastava & another v State of M.P. & others* [1999 (7) SCC 120] it has been observed that standard of education in an institution depends on various factors like caliber of teaching staff, proper syllabus designed to achieve high level of education in a given span of time, the teacher – student ratio, equipment and laboratory facilities, caliber of students admitted, adequate accommodation in the institution, the standard of examination.

⁶⁶File://Documents%20Settings?myself/My%20Documents?Chhattisgarh%20priv...4\14\2007

RIGHT TO EDUCATION

Birendra Prasad*

"Education is a human right with immense power to transform. On its foundation rest the cornerstones of freedom, democracy and sustainable human development".

Kofi Annan, Secretary
General of the UNO

INTRODUCTION

Before the coming of the British, India had an education system that could be traced back to 7000 years. The colonial rules replaced this with a system that suited their own interest which we inherited 60 years ago, when the new independent nation sought to create a new system of education in present time. It is necessary to go back to the basic question: what is education? The irrefutable answer is that education is preparation for life. Life is precious, and therein lies the necessity for long years of careful attention and preparation for it. Etymologically, the word 'education' is derived from the Latin 'educatio' means a breeding, a bringing up, a rearing.

INTERNATIONAL POSITION :

The right to education has been universally recognized since the Universal Declaration of Human Rights in 1948 (though referred to by the ILO as early as the 1920s) and has since been enshrined in various international conventions, national constitutions and development plans.

Since 1952, Article 2 of the first protocol to the European Convention on Human Rights obliges all signatory parties to guarantee to the right to education. At the global level, the United Nations' International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights of 1966 guarantees this right under its Article 13.

INDIAN POSITION:

Recently, a number of efforts have been initiated in India to make elementary education a fundamental right of every child. The Indian Constitution now guarantees elementary education to each and every child in the country.

The elevation of right to education from the domain of directive principles of state policy to that of fundamental rights had necessitated the enactment which came to be known as Right to Education Act, 2009. Subsequent to the amendment, the following article was inserted after Article 21 of the Constitution, namely:

* Junior Research Fellow, Faculty of Law, University of Allahabad, Allahabad (India).

"**21-A:** The State shall provide and compulsory education to all children of the age of six to fourteen years in such manner as the state way, by law, determine."

Article 45 was not deleted. Instead, the content of Article 45 of the Constitution was substituted by:

"45. The State shall endeavour or provide early childhood care and education for all children until they complete the age of six years."

In Article 51.A of the Constitution, after clause (J), the following clause was added:

"(K) Who is a parent or guardian to provide opportunities for education to his child or as the case may be, ward between the age of six and fourteen years.

Therefore, as may be noted from above, the provisions of Article 21-A itself state that they are to be implemented in such manner as the state may be law determine. Section 10 of the Right to Education Act, 2009 states:

"It shall be the duty of every parent or guardian to admit or cause be admitted his or her child or ward, as the case may be, to an elementary education in neighbourhood school.

JUDICIAL APPROACH :

Today, Right to Education is a fundamental right but behind it judiciary plays a vital role. In *Mohini Jain Vs. State of Karnatka*⁶⁷ the Supreme Court held that to education was a concomitant to the fundamental rights enshrined in Part III of the constitution. The Court also noted that right to education flows directly from the right to life in Article 21. Elevation of Article of right to education as a fundamental right under Article 21 triggered a controversy. Some private education institutions challenged this proposition. The Constitution Bench of the Supreme Court examined the correctness of *Mohini Jain* in *Unni Krishnan Vs. State of A.P.*⁶⁸ In this case, Jeevan Reddy J. (with Pandian J.) agreed that right to education is implicit in the right to life and personal liberty guaranteed by Article 21 in the context of Article 45 and 41 up to fourteen years. After this age, this right is circumscribed by limits of economic capacity of the State Mohan, J. also concurred. However, Sharma and Bharuch, JJ felt that a thorough consideration by a larger bench was required. After insertion of Article 21-A, this right is a fundamental right. In *State of Bihar Vs. Project Uchcha Shikshak Sangh, (2006) 2 SCC 545* the court held that education is a part of human development indisputably a human right.

Article 21-A is now a potential weapon in the armoury of education institutions. It is an effective check on dilatory tactics of the administration.

⁶⁷ AIR 1992 SC 1858 : (1992) 3 SCC 666

⁶⁸ AIR 1993 SC 2178 : 1993 1 SCC 645

The Right to Education Act, 2009 is enforced in India except J&K education. Some highlights of this Act are below:

1. Every child of the age of six to fourteen years shall have a right to free and compulsory education in a neighbourhood school till completion of elementary education (Section 3(i)).
2. Where a child above six years of age has not been admitted in any school or though admitted, could not complete his or her elementary education, then, he or she shall be admitted in a class appropriate to his or her age (Section 4).
3. It shall be the duty of every parent or guardian to admit or cause to be admitted his or her child or ward as the case may be, to an elementary education in the neighbourhood school (Section 10).
4. With a view to prepare children, above the age of three years for elementary education and to provide early childhood care and education for all children until they complete the age of six years, the appropriate Government may make necessary arrangement of providing free pre-school education for such children (Section 11).
5. No school or person shall, while admitting a child, collect any capitation fee and subject the child or his or her parents or guardian to any screening procedure (Section 13).
6. No child admitted in a school shall be held back in any class or expelled from school till the completion of elementary education (Section 16).
7. No child shall be subjected to physical punishment or mental harassment (Section 17).
8. No teacher shall be deployed for any non-education purposes other than the decennial population census, disaster relief duties or duties relating to election to the local authority or the state legislatures or Parliament as the case may be (Section 27).
9. No teacher shall engage himself or herself in private tuition or private teaching (Section 28).

CONCLUSION :

In ancient time in the Indian culture, it was held that an uneducated person's status was like that of an animal and understood that weight on earth we can support by the shalok of Sanskrit '*Esham na Vidya na tapo na danam, Gyanam na sheelam na guno na dharmah, Te mrityu loke bhuvibhar bhoota manushya rupen mrigash charanti*'. Presently in the age of globalization educational goal has changed. It has

become profession and means of survivorship. UNO aim is that by 2015 all persons shall be literate.

On its way to implementation, the Right to Education Act, 2009 faces many challenges; because many primary schools have no teachers and many backward villages have no primary schools.

In the materialistic age education is profession and many capitalists open public schools which are not for public but for rich persons only. The Supreme Court has directed all privately run schools to reserve 25% seats for the poor. This is a boon for the poor. Here it may be submitted that it would serve the purpose still better if the same directive were extended to the schools run by the minorities also.

In the end, it is humbly submitted that the Right to Education Act, 2009 is powerful weapon for all children and it has the potential to make their future bright. However, a lot depends on how the Act is implemented. A good start has been made and one can now expect better results. This will require support from not only the State and the schools but also from the parents.

EDUCATIONAL POLICY

(Salient Points)*

1 Introduction:

Even after 60 years of independence, we have not been able to achieve the expected social transformation and excellence in most of our national endeavours. The reason for this is that we are still following the pre-independence British educational system, as in many other fields. Education is the basis of all national activities and the best means for social transformation. Unfortunately, our national ethos does not reflect fully in our educational system. There is an urgent need to take a fresh look at educational policy and prepare a flexible, vibrant educational policy embodying Bharatiya traditions, culture and way of life, at the same time, consistent with modern scientific era.

In the modern times, expanse of human endeavour has spread from the earth to the infinite space. Therefore, the modern educated youth should be able to develop physical, mental, intellectual capabilities to accept such challenges.

Fortunately, we inherit such spiritual and intellectual qualities from our ancestors. Similarly, history also has given us such illustrious personalities.

2 Objectives of Education:

Overall objective of education is proper personality development of students leading progressively to greater perfection in human qualities. This requires moulding of his disposition and enhancement of necessary capabilities in the right direction.

Some of the main points relating to objectives of education are as follows:

1. Moral and spiritual raising
2. Commitment to the society from the heart, patriotism
3. Yearning for perfection (*Poornatva*),
4. Building of physical, mental and intellectual strength
5. Professional competence (industriousness, enterprise, professionalism).

The objectives of education would vary according to the age and capabilities of the child. This consideration is essential in personality development and structuring of stage wise curricula to achieve the objectives of education.

3 EMD Guidelines for Educational Sector (ref 1.4)

1 The educational policies pursued should be in tune with tenets of Ekatma Manav Darshan (Integral Humanism). Principles of *Samyak Vikas* (ref.3.1.1), the right development must be adhered to in their spirit.

* Prepred Ekatm Vichar Kendra and Deendayal Prerana Kendra
601Yogayog, Vazira Naka, Borivli (W), Mumbai 400091, Tel: 28339813, email: ekatma22@rediffmail.com

2 Education the manifestation of the perfection already in man

3 The student must properly get to know the thinking developed in our tradition regarding nature of human life, aim of life and finally he should be given the choice regarding his vocation and scheme of life but abiding by the *Dharma*, the social code of duties.

4 Education should lead to the realization that everybody is part and parcel of the family and the society he is living in and also the values like equality, equity, *samarasata* (feeling of oneness), fairness, *antyodaya* etc. must be imparted effectively.

4 Concept of Education – Different Facets

1 Education (Learning):

It is said that when a child is born, he has inborn capabilities for full development in all respects. Therefore, one can define education as development of these inborn capabilities in full measure in the right direction.

Formal education is the medium (or a process) through which a balanced development of body, mind and intellect is systematically accomplished. This further broadens with the study of various aspects his social and natural environment through systematically developed curricular programmes.

2 Four important facets of formal education:

2.1 Spiritual aspect:

The Life Principle (Chaitanya) behind the evolution of the Universe is called Parmatma (The Supreme Truth, The Supreme Self, Primordial Principle), which is all pervading, eternal, unlimited in time and space; and indestructible. Expression or Explosion of this primal energy appeared in the form of Universe (Vishwa). It is the substratum of our existence.

Since this single Life Principle is the basis of all living organisms, there is a relational feeling amongst them (Ekatma Bhav). This feeling begets unselfish love, faith, belonging, eternal peace, compassion, mercy, happiness (bliss), devotion etc in all beings. Many of these virtues are dormant in a child but he has inherent capability to unfold them under proper conditions of upbringing. Spiritual education allows these inherent virtues and feelings to flourish in a congenial atmosphere through a process called Samskar.

2.2 Dharmik Aspect:

Aforesaid primal principle is the basis of co-existence and mutual dependence of an individual, the society and the nature (universe). Proper understanding of this reality of human activity (or behaviour) holds a promise of providing the basis of universal brotherhood (*Vishwabandhutva*).

These principles of mutual relationship are expounded in our age old Sanatan Dharma or Hindu Dharma. This is the expression of Bharatiya Life Vision (*Bharatiya Jeevan Drishti*). Education based on this vision ensures a promise of world peace.

The objective of *Dharmik* (Value based) education implied in this facet is to mould a personality to possess higher moral values consistent with this wider perspective of life.

2.3 Social Aspect:

This implies proper understanding of social equality, brotherhood, social justice, and morality. This, while it rejects protection of privileges, it stipulates the responsibility of fulfilling the duties implied in a democratic system.

2.4 Physical (Material) Aspect:

Education in this area pertains to development of different capabilities (physical, mental, intellectual) for acquiring knowledge in natural sciences, develop material resources for the benefit of society keeping in view the need for maintaining proper balance between an individual, the society and natural systems.

3 Basic Principles of Education:

3.1 Child learns by himself, the *teacher only facilitates* learning.

3.2 The effective medium for transmitting higher values and principles is the *character and the integrity of the teacher*.

3.3 Speedy learning is possible by acquiring capacity of two basic skills of *detachment and concentration*.

3.4 Similarly, *oneness with surrounding* on one hand and an *intense urge for perfection* on the other are also important in integral understanding and learning.

3.5 Comprehension is easier with reference to written material and actual *experimentation* than only with oral practices.

3.6 Learning through *self-experience* is more concrete than bookish knowledge. This experience should be lively and tangible involving self and all facets of social life.

3.7 The whole system of education should not only relate to acquiring knowledge but also to self-reliance, *self-study* (contemplation) and action oriented.

3.8 A faster progress in learning can be achieved if all possible adjustments are done and proper attention is given to student's disposition, inclination and capacities.

3.9 Effective education should lead to favourable and observable *changes in behaviour and conscience*.

3.10 Even if the main objective of education is good character building, it is also essential to aim at a *well-balanced combination of character building and livelihood earning capacity*.

3.11 Education is a path for all round development of physical, mental, intellectual capacities as well as for spiritual, *Dharmik*, social and material advancement.

3.12 Education up to the age of 16 years should emphasize on full capacity development of physique and sensory organs of knowledge and sublimation (purification) of inner spiritual qualities (mind, intellect, self-consciousness).

4 Psychology of Education:

During education, qualitative progress of human beings continuously takes place at the levels of body, mind and intellect.

4.1 *At the body level:* agility (quickness), physical health, skills, games etc.

4.2 *At the mental level:* Purification of mind through the medium of *Samskara* (infusion of virtues), aesthetic sense, sensitivity, courage, love, patriotism, virtuousness, service etc are to be inculcated.

4.3 *At the intellect level:* Development and consolidation of various abilities relating to memory, talent, wisdom, discretion, prudence, judgment, logic, analysis, creativity etc.

5 Characteristics of Developed Personality:

The process of personality development has many aspects. Some of the quality requirements are all-time valid, while others are situation and time related. The former relates to the development of capacity of understanding and intellectual abilities while the latter relates to using these capabilities to deal with situations as they arise.

This cannot be only a book-based education but comes through a live experience and the process of education should be able to evolve such situations to gain live experiences.

A well developed of personality includes the individual as well as his relations with his surrounding extending to the universal existence. Various facets of such personality development are briefly stated below.

5.1 Personal Qualities:

(a) *Physical:* Cleanliness, health, physical exercises, Games etc.

(b) *Mental:* Reading, thinking (contemplation), Writing, aesthetic, service, respect, inner belief, valour (courage), leadership, free from addiction, concentration, objectivity etc.

(c) *Intellectual*: understanding, comprehension, analytical ability, discretion (good judgment), logical thinking, power of imagination and visualization, balanced view etc.

5.2 Individual-Family:

Sense of responsibility towards family, respect for elders, peace at home, following family traditions & cultural heritage respectfully and with understanding, maintaining good relations - all these are the foundations Bharatiya family system and breaking of these traditions will reduce the Bharatiya family system to what we may call a hermitage of the old.

5.3 Individual-Society:

Social ethics, social justice, equality and feeling of oneness across social domain, clean and transparent social dealings, participation in social and service oriented programmes, sense of social cleanliness, social health, strive for elimination of addiction in the society.

5.4 Individual-Dharma:

Firm belief in Supreme Self as the substratum of whole existence, understanding (feeling) the relational oneness amongst the self-society-nature-the Supreme Self, tolerance for different faiths etc. - all these finally culminate into a way of life. And, in this sense, *Dharma* is primarily a sense of duty and morality. *Dharma*, in particular, requires maintaining purity of means in all individual and social dealings & activities.

5.5 Individual-Environment:

This includes maintenance of purity of water resources, protection of trees and forests, cleanliness of public places, minimizing use of plastic materials, obeying the rules garbage disposal, minimizing the use of vehicles running on polluting fuels, kindness to the animal world etc.

5.6 Individual-Science:

Scientific outlook, removal of blind faith and superstitions, acceptance of only eco-friendly technologies, need based approach towards development of import substitutes, documentation and compilation of Bharatiya knowledge, knowledge of typical Bharatiya materials, science and technology heritage, domestic processing techniques, development of appropriate technologies, awareness of our intellectual property and patents rights.

5.7 Individual-Nation:

National pride, devotion (dedication), feeling for the compatriots and helpfulness during the periods of natural calamities or emergent situations, respect for our Samskriti, history, a sense of national integrity, participation in national defence.

5.8 Individual-World:

Humaneness, universal brotherhood (*Vishwabandhutva*), independence, understanding of the world affairs with a right perspective, vigilant about national security, information about various countries etc.

6 Proposed Educational System:

6.1 Management Principles of Educational System:

The Ekatma Manav Darshan should be clearly apparent in the education system. Consistent with this objective, it is necessary to formulate new curriculum, syllabi, and teaching methods and implement them on experimental basis for achieving all-round development and progress of students.

1 Criteria for suitability of the management system will be complete scope for proper personality development and fulfilling the objectives of education.

2 Education field should have autonomy similar to that of judiciary.

3 Education up to 12th standard should be free and expenditure on this be borne by the Government or the society.

4 Locality schools should be a normal system. There could be exceptions.

5 The medium of instruction should be the mother tongue and supplemented with English and Sanskrit wherever necessary.

6 Anybody following the rules and regulations will qualify for starting an educational institution.

7 Foreign institutions or those running under their administration/management will not be allowed to start educational institutes. However, we welcome knowledge or experts from all countries according to our needs.

8 Reservations for the backward communities are necessary but slowly and progressively the percentage should be reduced to nil. Along with reservations, and even afterwards, provisions should be made to improve their capabilities through proper training programmes.

9 Gurukul or similar systems will be encouraged.

10 Experts in other fields will be encouraged to participate in the educational programmes.

11 Parents' participation should be sought in the educational programmes to make their experience available to the students.

12 Accomplished teachers will get special recognition and encouragement.

13 Teachers are also eligible to start their own schools.

14 Any educational system is likely to become rigid and faulty after some time and hurdle to educational advancement. Therefore, it is necessary to keep reviewing the system at suitable intervals and make appropriate changes.

7 Administration of Education:

The administrative system to be established should be consistent with the principles discussed above. This will ensure uniformity (consistency) and facilitate achieving multiple objectives of education. From this angle, some points are presented below.

1 Autonomous Educational Sector

Field of education should be free from governmental and political influences so that teachers can enjoy the freedom of individual pursuit of knowledge, experimentation and implementation of various educational ideas etc. in an atmosphere free of any pressures. Freedom from any pressures does not mean unrestricted (unconditional) freehand but it implies freedom within the bounds of code of conduct collectively formulated by teachers' constitutional bodies.

Educational field should enjoy constitutional status as is enjoyed by our judiciary.

For this, constitutional amendment may be necessary. The autonomous status of the educational field can be reviewed after some period and appropriate changes in the nature of autonomy can be brought about.

2 Area Educational Bodies

To confer countrywide uniform institutional status to the administrative system of primary and secondary education, apex bodies (commissions) should be constituted at the national and state levels. These bodies shall take policy decisions in the light of Ekatma Manav Darshan and in the wider national interest.

Thus, we should have

- (a) National Education Commission (NEC),
- (b) State Education Board (SEB),
- (c) District Education Committee (DEC),
- (d) Taluka Educational Committee (TEC)

in a hierarchal decentralized fashion. This will allow considerations of territorial characteristics and facilitate understanding of local problems and their solutions.

3 Actual educational process and implementation will be monitored at the district level to avoid delays, red tape. This will also afford flexibility.

4 Teachers should be directly associated with progress in the educational activities. For facilitating this, there should be representatives from the Teachers Associations on the Taluka and District Education committees. On the District committees, there should be two members from the Taluka Committees. In addition, the District Committees should adopt, as advisers, one or two experts in the areas of economics, professionals, retired educationists etc.

5 There should be one Educational Research Institute directly under the National Education Commission.

6 For proper progress of schools, Shri J. P. Naik, renowned educationist, had proposed a concept of 'Institutional Planning'. This should be implemented at the school level and compiled at the district level. It should form the basis for giving grant-in-aid to the schools by the government or other financing bodies.

7 All children up to an age of 14 years should get education. For this, the number of schools required, up to village level, should be decided. Similarly, the number of teachers to be employed should be based on the formula, one teacher for every 40 students.

8 All the schools up to 10th standard, there should have Laboratories, a library and a gymnasium. Use of mobile laboratories can also be considered for catering to the needs of remote schools with inadequate facilities and simultaneously generate interest in science and scientific outlook in general public. This will also help removing superstitions prevalent in many places.

9 Every school should have a spacious playground and a garden, which can also serve as a laboratory. In addition, a 5-acre field should be earmarked as an agricultural laboratory for village schools where the students can get on-field live practical experience. This can also serve as demonstration fields for the farmers in general. For students from cities and towns, short duration camps should be organized on these agricultural fields (laboratories) so that they can also get similar with live experience and understand the role and importance of agriculture in the National life and economy. It is possible that some of the students from these groups impressed by this experience will at a later stage get in to agro-industry or agro-businesses like food processing, marketing of agricultural products etc. This will give a new direction and dimension to agriculture to make it viable.

10 For exchange of ideas, concepts, experiences and cooperation, there should be a group of 10 to 12 nearby schools – "Vidya Mandir" group.

11 Since Social Education is a part of total education. To make it a live experience, the locality around a school can serve as a social laboratory or a field of primary social experience.

12 The State Education Board should publish a magazine or a periodical for teachers and given to all teachers at a nominal cost. The coverage should include new

educational experiments, book reviews, ideas or information to enhance teacher's abilities, guidance for developing educational aids etc.

8 Educational Structure:

The whole educational structure is divided in to three stages as under:

School education : Pre-primary, primary, secondary

Higher secondary : Vocational, diploma

University education: pre-university college, degree, post-graduate.

The structuring of the school education should be according to age group based on physical and psychological considerations. Normally, brain and psychological development of children takes place up to the age of 7 to 8 years. To aid these developments during formative years and to familiarize them to the school environment, they should be admitted to the school after completion of 3 years. For progressive education consistent with physical and psychological development, the age group of 4, 5, 6, 7 years, is divided into two sub-groups as under:

8.1 School Education:

Pre-primary (Shishu): Lower class (4 year old)

and Upper class (5 year old).

Primary (Bal) : 1st to 5th standards, (6 to 10 year)

Secondary (Kumar) : 6th to 10th standards, (11 to 15 year).

Thus, up to 10th standard, mandatory education is completed.

After this level a different structure of education is contemplated which lays foundation for higher education. After 10th standard board examination, students can join any of the streams depending on performance and choice of the course.

8.2 Higher secondary: (16 & 17 year old age group) (youth)

Higher secondary education is divided into two major parts.

Part (1): Vocational Courses:

trade courses of 3 to 12 month duration

certificate courses (vocational) of 6 months to 12 month duration

Diploma courses of 3 to 4 year duration in a wide range of subjects /specialisation /disciplines. Those who pass the examinations conducted by the technical education board of the state with first class will be eligible for joining degree courses in respective branches of specialisation.

Part (2): Pre-university college education:

Duration 2 years (11th and 12th standards). Those who secure minimum 60% marks in the 10th Board examination will be eligible for admission to pre-university college. Those who pass Pre-university examination, conducted by universities, with minimum 50% marks will be eligible for admission to degree courses in various disciplines/specialisations including arts, sciences, commerce and other technical or other professional courses.

Students who fail or fail to secure minimum stipulated 50% of marks will be allowed to join any of the courses offered after 10th examination with due consideration to the college studies of two years, one year concession (advancement) for diploma courses.

Students also can pursue the college education through open universities.

It should be made compulsory for students 11 and 12th to participate in NCC, NSS or any other social service programmes.

8.3 College and University Education:

1 Personality development is the main objective of the primary and secondary education. The students coming out of such educational programme will be physically, psychologically and intellectually capable and having an outlook and attitude consistent with present era, will be ready to enter with confidence into the vast expanse of the universe.

2 Further education, after pre-university examination, of such well-groomed students falls within the purview of universities. The learned people in the universities need to give a special thought as to what kind of higher education should be given to them instead of putting them into present conventional mode of university education. They are going to mould the destiny of our country.

3 Whatever may be the area of specialization or discipline, every student at the college and university level, 15 to 20% of their courses should be related to national or social programmes. These should not be only bookish but should involve direct student participation possibly in the actual field.

4 Students' study groups or discussion groups should organize programmes, which give opportunities to develop abilities of discussion, exposition, presentation, self-study, contemplation etc.

5 In the college and university curricula of all disciplines, there should be at least one compulsory elective course every year of humanities and social studies. For example, courses of the type

- Philosophy of development,
- Social equality – concept, scope and avenues,

- Philosophy of science,
- Science in relation to society,
- Role of Dharma in environmental protection, etc.
- Religion, Science and Culture,
- Indian religious thought,
- Foundations of Civilisation
- World history etc.

6 For professional disciplines, separate universities should be established in every state, for example, Technology University, Medical University, and Agricultural University with affiliated distant campuses to cater to variable agricultural conditions, *Ayurvedya* University. The Agricultural University should also run Diploma and Certificate courses. Agricultural university and *Ayurvedya* University should conduct collaborative educational and research programmes relating to plantation and processing of medicinal plants.

7 *Ayurvedya* University should not only conduct the medical education programmes but be originator and conductor of awareness movement of Bharatiya concept of “Comprehensive Healthy Life”. *Ekatma* concept is closest to *Ayurveda*.

8 Every state should have one Technology University. To give impetus to development of new technologies, re-engineering and product development, “Technology Parks” should be established. This will give to young technologists full modern facilities for design, development and manufacturing of proto-types as a first step of development of new products and technologies.

9 Our country is lagging much behind in research and development (R & D) in the fields of engineering, medicine, biomedical engineering, pharmaceutical, *Ayurveda* and agricultural science. To promote research in these areas, attempts should be made right from the college stage where intelligent and unpolluted fertile brains are available in plenty.

9 Educational Institutions

1 In the early British period, all the colleges and universities were run by the government. There was hardly any scope for education arousing nationalist thought. For this reason, after some time, some ambitious nationalist minded people educated from these government colleges started private educational institutions. Founder members carried out the expenditure from their own pockets for running these institutes. The Deccan Education Society founded by Lokmanya Tilak and his colleagues was one such institution.

2 After independence, along with government-run institutions, private societies were encouraged to start educational institutes with full grant-in-aid. Day to

day administration was run by these societies but all the expenses were borne by the government. During this period too, the management conducted their institutions with devotion and viewed education as a sacred duty.

3 Today the institutions are run like a business. Since the private institutions have full authority to decide upon donations and fees, there is a profiteering motive. There are exceptions to this. Those institutions run by some religious establishments are somewhat less spoilt in this respect.

4 Remedy on this would be to give special encouragement to those institutions, which are working for higher goals and objectives.

5 In essence, management of institutions must pay attention to the fact that both the quality of education as well as the quality of the management is equally important.

10 Curriculum

10.1 Guiding Policy:

1The process of education is expected to enhance human attributes of a person as well as of the society. For this, it is essential to give emphasis on the development of these attributes while imparting professional skills and capabilities (learning to be instead of learning to do). It is a difficult and complex task and, therefore, to be achieved through systematic planning as the student advances to higher standards.

2 Standard-wise planning:

--In the primary standards, through short moral stories, parables etc.

– in the next stage by explaining what these stories intend to convey e.g. spiritual aspects, sense of duty, behavioral norms etc.

-- in the next stage, explaining the underlying philosophical concepts.

– The next stage is the comprehension of philosophical basis of the integrating bondage (relation) between an individual-society-nature.

All these steps are to be properly integrated into the framework of education and curricula.

It is necessary to state insistently and specifically that this approach is completely secular, that is irrespective of any faith, creed and beliefs.

3 To bring this all-inclusive (comprehensive) educational concept on a practical level, sequential modules need to be prepared for progressive implementation.

4 Some part of the curricula will be uniform throughout the country while the rest of them will vary depending upon regional characteristics.

5 In general, the students should be able to tackle common problems.

6 The curricula should have sufficient scope for arousing and retaining curiosity of the students and suggestive content to satisfy, investigate and apply the findings in practice.

7 Adequate coverage of the concept of sustainable development, supportive cultural outlook and role, restrained consumption etc.

8 Periodic review and appropriate changes in the curricula should take place. Usefulness and effectiveness of the courses should also be considered during the process of review.

10.2 Dharma in Education:

1 It is a world of science and technology today. Life is dominated by the science and technology. The mindset of people has also changed accordingly. There is a general feeling in the society that science will be able solve all its problems. At this juncture, eyebrows will be raised if somebody says that study of *Dharma* should be included in the curricula.

2 The reason for this is that, these days, people are seeing the consequences of the Majhabi education or the one that is being given through the Church. For this reason, we need to discuss this issue.

3 It is first necessary to understand that there is a considerable difference between Majhabi Education and the place of *Dharma* in education. Majhabi (religion) education implies study of its sacred books and rituals. There could be other intensions also.

4 On the contrary, when the subject of *Dharma* will be taught and discussed, it would include topics like – “ What is Dharma, duty towards family, society and nation, moral conduct, its necessity, what is its role in supporting social life, Dharma-culture-civilisation-science relationship, spirit of enquiry, what is its effect on the social life and abilities. This subject will also deal with topics like, “What are various Majhabs, Beliefs, cults and creeds in the world, what are their supporting philosophies, what is the difference between *Dharma* and Majhab, what is the meaning of tolerance towards other beliefs, what is its importance, what is the Samskruti of our country, its *Dharmik* support (philosophical basis), what are the characteristics of our *Bharatiya Dharma*, its role in integral development of our country. This subject is expected to discuss such wide-ranging topics.

5 Dharma has a facet, which deals with ‘Duties implied by the Dharma’. These include -- Raj-Dharma, Samaj-Dharma, Putra-Dharma, Snatak-Dharma, Grihastha-Dharma etc. It is essential to discuss these aspects and imbibe them properly in the minds of students.

6 Nature of examinations of this subject at the university level should be such that these provide motivation for acquiring further knowledge and attempt to test intellectual abilities.

10.3 Primary Education:

In the tender age (up to 8 to 9 years), the body and brain are in the process of growth and development. Objectives of education at this stage should be Samskar, literacy (writing abilities), expression of feelings, observation of surrounding, physical and mental games, and activities.

10.4 Secondary Education:

Include subjects useful for life. Education to stimulate thinking, generate scientific outlook, develop creativity and imaginative power (conceptualization, fantasizing, visualization), value education for self-restraint and balance of mind, Yogasanas, Surya-namaskar, competitive and team games (sports), awareness of social duties, ideals for life, organization of activity, environment, introduction to social work, acquaintance with professional outlook, skill development, leadership, character building, lessons in Rashtra-Bhakti.

10.5 Higher Education:

This comprises a group of boys and girls with fully developed physique, intellect and mind. They have entered into fields of their choice for gaining knowledge and practical experience. The education at this stage should help them develop leadership qualities, capacity of independent reading and thinking about various issues and problems in their fields of studies in the light of *Ekatma Manav Darshan*.

11 Open Schools, Open Universities and Distance Education

1 Facilities for quality education in various fields should be easily available. These are necessary and useful for spreading general education in the society, education for working people, continuing education for refreshing and/or gaining advanced of knowledge, learning newer skills, getting higher qualifications. Open schools, open universities and distant education play a significant role in this direction.

2 Every state should have one Open University, which should offer appropriate courses for the students who have cleared 10th board examination. Presently some states have established such a type of university, but the quality and acceptability of the certificates, diplomas or degrees conferred need to be improved.

3 Educational channels of Door-Darshan can be of much help in this respect.

4 Mobile laboratories are also useful.

12 Informal Education

Short informal courses of the following type should be run at the village level --- literacy spreading, adult education, public health, information availability, *Bharatiya Samskruti*, history, *Dharma* awareness, *Yoga* Practices. These may be

jointly organized with the help of school and local educated persons. For this purpose a local “Knowledge Circle” may be established. Because of the participation of the school, it will acquire a status of ‘Centre for social activity’.

13 *Aacharya Samstha* (Institutionalisation of teacher status)

13.1 Ideal *Aacharya*

Teacher’s knowledge, personality, character, outlook about life, affection, sensitiveness, idealistic nature, dutifulness, righteousness, *Vivek* (power of discrimination), patriotism etc should be expressive through his day-to-day behaviour. Even though students are small in age, they observe the teacher keenly. Therefore, teacher’s behaviour should set an ideal before the students. The single term ‘*Aacharya*’ fully expresses these qualities of a teacher collectively. It is, therefore, more appropriate that the teachers’ community should be best known by the institutional concept implied in “*Aacharya Samstha*”. In addition, this expression is consistent with the Bharatiya ‘*Guru-Shishya Parampara*’ (teacher-student relational tradition). From this viewpoint, some of the salient features of this institution are briefly presented below.

1 Acharya should have firm belief in the ideology (philosophy) of the *Ekatma Manav Darshan* on the basis of which this educational policy has been prepared. Similarly he should do his best to achieve the goals (aims and objectives) set forth.

2 Teaching is a sacred duty. He should be aware that it is medium of social transformation and national reconstruction.

3 He should possess all those characteristics of a fully developed personality, which this educational policy proposes to develop.

4 The *Aacharya* should have an intense urge for knowledge and this should serve as an example not only for the students but also for others.

5 Teaching is not a means of earning money. Since this principle is important, it is the responsibility of the society and government to see that all the needs for good subsistence of the *Aacharyas* are taken care of.

6 Irrespective of the specialization and expertise of the teacher, they should be well acquainted with Bharatiya traditions, philosophy, history, geography, *Samskruti*, Samskrut language.

7 *Aacharyas* should have teaching skill, ability to make use modern technological aids in teaching, knowledge of contemporary changes and advances taking place in their fields of study, inclination to try newer experiments in teaching.

8 A person fulfilling these expectations deserves to be a torchbearer in social reforms in the light of *Bharatiya Jeevan Drishti* (way of life).

13.2 Getting *Acharyas*

Of course, finding such an ideal *Acharya* will be a primary requirement for this educational system. Such teachers will always be in short supply. To overcome this hurdle special efforts need to be done (special training programmes).

In this process, a survey of teachers at various levels should be done to identify such persons. They will be required to take initiative in establishing this new educational process.

13.3 Training of *Acharyas*

The training of *Acharyas* is very important. The quality of teaching and personality development of students depends upon success of the training programme for teachers. Through this training programme only, good qualities like commitment to duty, motivation for the best teaching performance, improvement of teaching skills and abilities, passionate attachment to the field of education, imbibing values, obsession with ideals, not only improvement but desire for real elevation of capabilities etc can be imparted.

13.4 Opportunities for *Acharyas*

Some special opportunities also should also be made available to the teachers, for example,

1 Apart from teaching, college professors should have interest in research. Good facilities of research should be made available to them.

2 Availability of funds will encourage good teachers to engage in research work. This will lead to better quality of teaching and will benefit the students. Some useful results might also come out.

3 There will be an atmosphere of enthusiasm and motivation for experimentation if sufficient freedom for trying out various methods of teaching and selection of research topics is available.

4 There should be a facility for *Acharyas* to go to other universities or leading institutes for getting advanced knowledge in their field of studies.

14 Examination System: Evaluation:

1 Presently the examinations have become tests of memorization. Assessment based on one examination of 3 hours at end of a term or a year is not adequate to test the knowledge of the student. There are instances of copying, which casts doubts on the credibility of this examination system. A continuous evaluation method is one alternative to improve the situation.

2 In general, the objective of the examination system should be to test

(a) understanding (b) discriminative ability (c) analytical power (d) logical thinking (e) social awareness (f) scientific outlook (g) power of expression etc.

3 Evaluation and results of examination could be in the form of grades A, B, C etc or a cumulative performance index (CPI) based upon conversion grades into a numerical index.

4 For the 10th examination, instead of pass or fail system, the CPI index gives the standing of the student which can form basis for his admission to various academic programmes. Those who are below a certain index can discontinue education or can retry for better index if they desire to do so.

5 Examination at the college and university level should be testing intellectual capacity and encouraging acquisition of knowledge. Universities should develop various method of achieving these objectives.

15 Size of Universities

Presently the universities have become unwieldy and because of this, their educational standards are declining. These universities should be divided and each university have about 50 to 60 colleges affiliated to it.

16 Science Education

1 Today, we are in the science age. Therefore, it is appropriate that science has inseparable place in formal education right from the primary stage to the postgraduate level.

2 However, it should be noted that there are some consequent effects of one-sided stress on science education. These effects are strikingly visible in western societies. To avoid such imbalance, it is necessary to formulate science curricula carefully consisting of subjects, which are complementary with each other.

3 In the education of science subjects, the difference between science and technology should be made clear. And it should also be taught as how to bring them into practice appropriately. Science is a fundamental subject while technology is applied science.

4 Technology can become outdated as well as it has relation with contemporary needs. Therefore, it is appropriate that every country should develop technology for its own requirements. Therefore, our country should give stress on teaching and research in fundamental sciences and instead of going in for imported technologies develop them indigenously according to our needs. If we do not do this, we might be begging for them indefinitely.

17 Mother Tongue as a Medium of Instruction

1 In the last 50 to 60 years, a lot of discussion has taken place on medium of instruction. From the educational viewpoint, the subject of medium of instruction carries exceptional importance.

2 All educationists and psychologists from all over the world have stressed that mother tongue is the best medium of instruction. The reason being that the process of education is basically concerned with comprehension, acquisition, expression of thoughts and feelings. This process takes place most naturally, effortlessly and speedily through mother tongue.

3 The most important issue in connection with medium of instruction is that, if education is the instrument of social change and progress of the society, it is necessary to communicate with them in their language. Through such interactions only, many things including dissemination of knowledge, expression of concepts, exchange of thoughts, mutual understanding etc will take place. It is thus clear that the scope and importance of the language issue is not limited to the problem of medium of instruction only.

18 Education for Women

1 Women constitute almost 50 % of population, but the percentage of educated women is considerably less. Therefore, it is imperative to pay more attention to women education.

2 We must go beyond mere percent wise equal opportunities or equal opportunities on the moral basis and consider the problem of women education.

3 They are not only physically different from men but are also different in their feelings, emotions, sentiments, motherhood, likes & dislikes, place in family, distinctive professional capacities. For this reason, apart from general education, it is necessary to consider some special educational requirements consistent with their attributes mentioned above. They are the best judges of their requirements.

4 Women community should be involved to chalk out a plan for their educational needs so that they can effectively play their role in nation rebuilding and social reforms. They have proved their worth in most of the normal occupations. They can also carve out their own respectable position in the society on the basis of their special endowments. There are some fields in life wherein they could be more successful than men. Therefore, when once the principle of equal status has been accepted, their path of progress becomes fully open to them. However, they must firmly insist on this right.

5 Bharatiya family system is one of the special features of our *samskruti*. Bharatiya women have played a significant role with dedication in preserving, strengthening, adding new dimensions and maintaining cultural heritage. Many Shivajis, Vivekanands, Ahilyabais, Laxmibais will be borne in such cultured families.

Modern fathers and mothers have to jointly discharge this important responsibility in light of the present social situation.

19 Family and Education

1 The education of *Samskruti*, arts, literature and science takes place both ways, at the formal as well as informal levels, and should necessarily take place in this fashion.

2 Mostly, in schools, colleges and universities, emphasis is on formal education. Therefore, responsibility of personality development and character building also rests with families.

3 There are better chances of *samskar* and educational nourishment in a joint family. The reason is that, in a family, a good combination of youthful energy and elderly experience is available.

4 In this respect, it will be useful if schools organise guidance camps for parents for advising them on how to guide their wards properly and assess the progress in their studies.

20 Education of the Deprived

1 Some of the reasons for people from deprived classes being far from education are - necessity is not felt by the parents, there may be financial constraints, and nearby school is not available.

2 Some facilities are now made available to such deprived class. It is necessary to see how these facilities could be effectively used.

3 One of the ways of overcoming these constraints is to employ specially trained idealistic teachers.

4 Special schools for the deprived persons can be started on experimental basis.

21 Village Education:

1 Nearly 70 % of our population lives in villages and living depends upon agriculture or the work related to it. It is, therefore, not only essential but imperative to formulate and evolve an educational structure consistent with their requirements and vocations. This area has been largely neglected in the last fifty years. Agricultural universities have been established, many programmes (schemes) for agricultural population have been implemented with good results, but the educational aspect seems to have been neglected. Educational programmes meant for cities are being imposed on schools in villages.

2 A periodic review should be made for structuring education for villages in the light of changing scenario of fast increasing communication facilities, improved

infrastructure, advances in agricultural science and technology, and the real needs of the village and agriculture related sectors.

3 In view of this, some important points relating to village schools and education are listed below:

3.1 in some villages the schools are located 1 to 2 km away from their dwelling localities. This is one of the major reasons for school dropouts.

3.2 Educational facilities are poor.

3.3 No coaching facilities for intelligent children for participating in competitive examinations, therefore, merit looks like a monopoly of children from cities.

3.4 Because of all such lacunae, the results of the 10th standard are low.

3.5 Financial capacities being much lower, this class cannot afford higher education. This leads to a new social stratification. This problem is also present in cities.

3.6 Agriculture related vocational education not being available; there is feeling that the school education is not useful.

3.7 those students pass 10th,12th or some years of college tend to go to cities as their education in the school or college is a mismatch with village life from the job or vocation point of view. Similarly, landless families follow the same course for livelihood. This not only creates many problems for the cities but their living conditions also become miserable. Some meaningful efforts are necessary for them to return or contain the outflow from villages. Therefore, the education should be such that they get occupational support for living in their villages.

3.8 It should be seen whether yearly vacation system for village schools can be modified to suit the agriculture supported life.

4 New Education Pattern in Villages

An integral view of social life in village, agricultural requirements and economics should be taken to restructure village education with reference to impending food shortage throughout the world.. This will act as a basis for designing village educational programmes up to 12th standard.

5 The economic potential of the agricultural sector is immense. If proper planning and corresponding educational support are provided, it is not impossible to shift the economic activities of our country from cities to villages in a big way. This will solve many of our problems relating to cities as well as social disruption

6 To begin with, it would be advantageous to take review of agricultural and other universities. It would prove fruitful to strengthen them and increase their number.

22 School – A Vibrant Live Centre of Society:

1 Every school should be intimately connected with the social life of the surrounding locality. They should have a kind of mutual understanding. People of the locality and the school should cooperate and organize programmes to give education of social work. This will help to create awareness that the school is a live source of energy, which moulds their destiny.

2 The teachers, ex-students and parents should establish a committee through which activities like reading rooms, educational classes, discussion circles, adult education, sports should be organized. The school library should become public reading room in the evening.

3 Some of the programmes can be of the type --- cleanliness drive (campaign), tree plantation, forestation programme, cleaning of water sources, drain water disposal, literacy drive, different health campaigns, cultural festivals, participation in schemes run by Gram Panchayat / municipality, maintaining temperature and rainfall records of the area etc. This will open a way for the students get live experience

4 Educative study of the locality can be undertaken and ways and plans for development of the area can be discussed.

5 The locality will get guidance from teachers, experts made available by the school and participating parents. This will increase social sensitivity of the teachers and the students.

6 For this, separate grant and appointment of a committee at the school level will prove useful.

23 Vocational Guidance Centres for Students:

It seems proper for the schools make arrangements to guide their students about further education after 10th examination concerning various vocational courses, preparations required for admission etc. There should be one vocational guidance centre at the Taluka level equipped with capable staff for guiding the students and holding aptitude tests.

24 Autonomy for Educational Sector

1 Education is in the common list of the Central and state governments, therefore, both of them play a very important role in educational policies, study programmes and conduct of education. Political philosophy of political party, which is in power, has its both good and bad effects on education. Sometimes political interference and meddling inflict great damage to the basic objectives of the education. For this reason, earlier in this draft document, a full autonomy is advocated for the educational field.

2 It is necessary that a national level full-fledged debate should take place and a consensus be arrived at, on the nature of autonomy and its control.

3 Deemed university implies autonomy at the university level. It is useful but many times, it is observed that this autonomy is misused. A review of this system should be made and necessary amendments should be made in the scheme.

4 In the university system, selected colleges/institutes are being granted educational autonomy on experimental basis. This includes autonomy for updating curricula, a different examination system, offering elective subjects, various experiments in teaching and learning, separate entrance examination and finally awarding degrees/certificates. Autonomy for deciding fees for different study programmes and salaries of the staff is not yet conferred.

5 If some minimum educational autonomy and limited economic autonomy are allowed, it is possible to maintain and improve quality of education.

6 Some educationists are of the opinion that those colleges, which have earned 'A' grade of NAAC should be considered for giving educational autonomy and those with 'B' grade should be offered autonomy on temporary basis. This experiment is worth trying.

25 Foreign Institutions in the Field of Education

1 Public opinion is largely moulded through education. Therefore, if foreigners enter in to this field, there is an apprehension that we may slowly go under their influence. Therefore, in principle, education should remain totally under our control. Recent history under British rule is a testimony to the fact that their education system influenced a large section of our society to have a mindset damaging to national self-interest.

2 Even if the institutions owned or managed foreign agencies are not allowed, there should not be any bar on welcoming knowledge or experts from other countries as and when need arises.

3 At present there is no law in our country in connection with foreign educational institutions or universities.

4 Foreign institutions try to get authorisation under the garb (veil) that education is a kind of social service. But we must take a clear stand that education is field of '*Samskar*', not a business and we cannot make it open to foreigners.

5 One day, Bharat will have to sign on the "General Agreement on the Trade in Services" (GATS) of World Trade Organisation (WTO). Under these, agreements many foreign universities are assuming that they have full open access and, with this expectation, have started different educational programmes in collaboration with our universities/institutions. All these programmes are illegal and must be thwarted with iron hand. We should not agree in WTO that education is a tradable service and open for foreigners.

26 Importance of Samskrut Language in Education:

Sanskrit language is important as it has *Sanskritic* heritage, spiritual literature, useful for getting command over other Indian languages. It is mother language of most of the Bharatiya languages. It has huge treasure of words and has tremendous potential of generating new words. It has not only world's best philosophical literature but also contains well established scientific literature like mathematics, algebra, geometry, astrology, art, sculpture, engineering, metallurgy, chemistry, *Ayurveda*, botany, phonetics etc. It can be taught in schools from 3rd standard so that students will have confidence in our national capabilities.

27 Challenges before Educational Field,

Challenges do not pose only problems but contain hidden opportunities also if we go creative solutions. We had these opportunities earlier and will continue to get them in future. Some of the main challenges are,

1. Unnecessary interference of politicians and bureaucrats in educational field,
2. Globalisation,
3. Marketing of education,
4. Degradation of standard of teachers and of education to some extent,
5. Dropouts from schools,
6. Unnecessary crowding in colleges,
7. Futility of education,
8. Increasing practice of private tuitions and coaching classes.

28 Educational Camps

It should be regular feature to organise technology, arts and literature camps at the district and state levels to supplement the educational programmes of schools and colleges. These are intended to provide direction and encouragement to the young generation. A competent set up should be created for this purpose.

29 Regulation of Educational Sector

1 Regulatory Boards should be established at the national and state levels. These would be working under the proposed National Education commission.

2 A competent person, primarily from educational field only, should be in-charge of this regulatory board. An expert from other fields having keen interest in education may also be considered for this position.

3 Presently, there are different commissions for different fields, e.g. Vigyan Aayog, UGC , NAAC, Indian Medical Council etc. These should be merged in the Regulatory Board for the Educational Sector or the Board should be a coordinating agency for all present such agencies.

4 There is proliferation of so-called private universities and deemed universities. Apparently, there is no regulation of such institutions.

5 Presently, government supported universities are, in reality, backbone of the higher education but unknowingly an impression is being created that these are secondary. In fact these are the universities, in the real sense, giving all-round education and conducting high-level basic research. No special favours should be shown to institutions having commercial outlook.

6 Bharatiya universities should be allowed to establish universities abroad as per the laws, rules and regulations of those countries.

30 Transformation in the Field of Education:

1 Central Government should take the first step to complete all the formalities necessary for conferring autonomy to the educational sector.

2 To achieve the projected aims and objectives of education, and the expected social change and nation building, it necessary to restructure the whole educational system completely.

3 A standing training programme for teachers to mould their outlook and personality to make them compatible with the proposed educational philosophy.

4 A national and state level curriculum committees should be appointed to chalk out guidelines and to take steps for production of text books.

5 National Education Commission and State Education Commissions be constituted at the earliest

6 Educational Sector Review committee should be appointed at the national level with tenure of 5 years. Following study groups should come under its jurisdiction.

6.1 Review and improvement in curricula

6.2 Quality improvement of teachers, their performance evaluation, capability /competence evaluation, usefulness assessment and improvement of schemes for encouragement and penalty

6.3 Evaluation of educational experiments/projects and

6.4 improvement of standard/quality of education through various means

6.5 Futuristic view committee: A standing committee (or a mechanism) is required for assessing future opportunities world over and needs of specialists in various areas is essential. On the basis of this assessment, the committee will suggest various solutions.

7 Financial Provisions: Central and State governments should make provisions in the annual budget. After passing through the statutory conventions, its utilisation should be entirely left to the autonomous bodies.

8 Education up to 12th standard should normally be free and merit come means scholarships should be given to graduation students.
